भाईदूज–

६८७ (आसावरी)

जसुमति थार साजि कै बैठी मोहन तिलक करावें हो।
बैठि अंक भोजन करौ लालन ! भाई–दूज मनावें हो।।
देखि नंद उपनंद गोप सब प्रमुदित मन हुलरावें हो।
श्रीमुख चंद निरखि गोपीजन नैननि कोर सिरावें हो।।
मुदित भई अति रोहिनी माता सुख अंतर उपजावें हो।
नाना भाँति सकल गोकुल–तिय मंगल गीतनि गावें हो।।
यह लीला अवगाहन कीजै जो चितबनि उर आवें हो।
'परमानंद' प्रभू श्रीवल्लभ–चरन–कृपा–बल पावें हो।।

प्रबोधिनी–

६८८ (बिलावल)

आनँद आजु कुंज के द्वार।
सखी सकल मिलि मंगलगावति नैननि निरखति नंददुलार
नव नव बसन नवल नव भूषन पुहुप दाम सब सुभग सिंगार
मंडप मधि बैठे मनमोहन संग लियें श्रीराधा नारि।।
दीपमालिका रचि चहुँ दिसि तें जगमगात अँग–जोति अपार।
बारि आरती जुगल–रूप पर 'परमानंददास' बलिहार।।

६८९ (बिलावल)

आजु एकादसी देव–दिवारी तजि निद्रा उठि हो गिरिधारी
सकल बिस्व कौ प्रबोध जु कीजै जागौ परम चतुर बनबारी
सुभग मुहूरत भवन बधाई निरखत बदन परम रुचिकारी
'परमानंददास' छबि उपजी बार–बार जाऊँ बलिहारी।।

६९० (बिलावल)

देव–दिवारी सुभ एकादसी हरि–प्रबोध तहाँ कीजै आजु।
तजि निद्रा उठौ हे गोविंद ! सकल विस्व–हित काजु।।
सुभ मुहूर्त भयौ भवन बधाईं ठौर–ठौर गावतिं ब्रजनार
'परमानंददास' कौ ठाकुर जगत–पतित–आधार।।

६६१ (बिलावल)

देव जगावति जसोदा रानी बहु उपहार पूजा के करिकै।
इच्छु–दंड मंडप पुहुपनि कौ चौक चहूँ दिसि दीवा धरिकै
ताल पखावज भेरी संख-धुनि गावत नित मिलि जागरन करिकै।
धूप–दीप करि भोग लगावति दै पुहुपावलि अँजुलि भरिकै।।
घृत–पकवान अरु प्रीति परम रुचि बिजन सिगरे सुथरे तरिकै।।
'परमानँद' जगदीस बिराजौ गोकुलनाथ सुमिरि पद हरिकै।।

६६२ (नायकी)

जागे जगजीवन जगनाइक।
कीयौ प्रबोध देव गन जब ही उठे जगत सुख दाइक।।
या प्रभु की प्रभुताई भारी सिव ब्रह्मादिक पाइक।
कमला दासी पाँइ पलोटै निपुन निगम से गाइक।।
जहँ–जहँ भीर परति भक्तनि कौं तहँ–तहँ होत सहाइक।
'परमानँद' प्रभु भक्त-बच्छल हरि जिनिके मन-वच-काइक।।

20. रास

मान–

दूती वचन, श्रीस्वामिनी प्रति–

६६३ (टोडी)

हरि कौ भलौ मनाइये।
मान छाँडि उठि चंद्र–बदनी ! उहाँ लौं चलि आइये।।
निबिड कदंब छाँह तहाँ सीतल किसलय सेज बिछाइये।
एकौ घरी जु ता बिनु रहिये सो कत वृथा गँवाइये।।
दान नेमु ब्रत सोई[1] कीजै जिहि गोपाल पति पाइये।
'परमानँद' स्वामी सौं मिलि कै मानज[2] दुख बिसराइये

६६४ (आसावरी)

कमलनयन बोलत रूप–निधान।
बेगि चलहि राधिका मुगध-मनि ! उदय करनि चाहत सखि ! भान

---

१. तहाँ लगु (क), २. मानस (क)

सुनहि कृसोदरि ! निसा कृसा भई कृस न भयो तेरौ इहि मान
प्राची दिसि बर अरुन देखियत तै न दियौ अनुराग कौ दान।।
चरनायुध बर बोलनि लागे तैं नहिं मौन तजी मतिमूढ !
फिर पाछे पछितैहै मिलनि कौ नंद–कुँवर नागर गुन–गूढ।।
इतनी बात सुनी जब स्रवननि गहि दूती के चरन अरु बाँह।
'परमानँद' स्वामी पै लै चलि जो बोली प्यारे निज नाह।।

६६५ (सारंग)

राधे ! तैं लोचन दूत किए।
नंद भवन तें मोहन माधौ सैन बुलाइ लिए।।
ब्रस तैं निकसि गवन कियौ बन कौं अतिसै चतुर हिए
कुंज–कुटी में पैठि स्यामघन उर पंर उरज दिए।।
कमलनयन मृगनैनि परस्पर हिलि–मिलि अधर पिए।
'परमानंद' सफल दिन मान्यौं कहत हैं हम जु जिए।।

६६६ (सारंग)

चितवनि प्रीति की पहिचानी।
मारग मिले राधिका नागरि घूँघट में मुसिकानी।।
ठाढे द्वार नंद जू के ढोटा दीनी गुपत निसानी।
बेगि चलहु उठि गहरु करति कत दूती रही रिसानी।।
भाग्य आपुने भाँवतौ पायौ नैननि माँझ समानी।
'परमानँद' स्वामी मनमोहन तेरीये मिलनि हितानी।।

६६७ (सारंग)

बैठे लाल कालिंदी के तीरा।
लै राधे ! मोहन[1] पठयो है इहै प्रसाद कौ बीरा।।
सुनि री ! समाचार श्रीमुख के जे कहे स्याम–सरीरा।
तेरे काजै चुनि राखे हैं जे निर्मोलक हीरा।।
सुंदरस्याम कमलदल लोचन पहिरि पीतांबर चीरा।
'परमानंददास' कौ[2] ठाकुर नैन–लोल मति–धीरा।।

---

१. *गिरिधर (क)*
२. *की जीवनि (घ.)*

६६८ (सारंग)

तू हि मनाइ लेहि लाल प्यारौ।
रुठि रहे ब्रजनाथ राधिका कीजै चित्त सवारौ।।
तुम्हारौ उनकौ एक प्रान है सो कत करति निन्यारौ।
बिछुरि गएँ ज्यों बहुरि चाहिये सुनिये मतौ हमारौ।।
तू जिनि जानहु जाति ग्वाल है गोधन कौ रखवारौ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर तहाँ गरबु नहिं गारौ।।

६६६ (सारंग)

मोहन मुख देखनि आउ री !
जहाँ स्यामसुंदर खेलत हैं अबहि मिलनि कौ दाउ री।।
सघन निकुंज बहुत द्रुम फूले बिधि निरमी इहि ठाँउ री
नौतन दल लै कर परसत हैं नीकौ कियो है बनाउ री।।
दूती–बचन कहत सुख लागत धाइ गहे तब पाँउ री।
'परमानंद 'प्रभु दरसन दैहैं आनँद–मंगल गाउ री।।

७०० (सारंग)

मान तौ तासों कीजैं जोऽब होइ मन बिखई।
मोहन कमल–नयन की महिमा कै बिरियाँ तुम्हें सिखई।।
उठि चलि बेगि गहरु कत लावति निसा जाति है खूटी।
उडुपति ज्योति मलिन भई भामिनि ! अरु पीरी पहँ फूटी
दूती वचन कहे जब सनमुख मन में ग्वालि मुसिकानी।
'परमानंद' स्वामी की प्यारी रबकि कंठ लपटानी।।

७०१ (सारंग)

नंदलाल की बंदसि नीकी।
देखत बदन–ज्योति अति नीकी
जाके रूप काम[1] द्युति फीकी।।
चितवनि नीकी बोलनि नीकी
गावनि नीकी गति–मति नीकी।
सब विधि नीकी कमल–नयन की
तैसीये हँसनि हरनि मन पी की।।
कौन कौन अँग करौं री ! निरूपन
सरद–चंद सीतलता तन की।

मिलहि राधिके ! प्रेम–रस–सागर
'परमानँद' स्वामी के मन की।।

७०२ (सारंग)

सुनतहिं जिय धरि मुरि मुसिकानी।
को[1] है स्याम कौन कौ ढोटा अनगढ छोली बानी।।
कछु अनुराग हृदै कौ जनायौ अलकलडी मति ठानी।
लै स्यामता नयन मँहि राखी कज्जल[2] रेख सयानी।।
जिय की बात न प्रगट जनावति चौंप रहति क्यों छानी।।
'परमानंद' प्यारी विचित्र मति मुख रूखी हिय मानी।।

७०३ (सारंग)

राधा ! माधौ कुंज बुलावै।
सुनि सुंदरि ! मुरलिका धारें तेरौ नाँउ लै–लै गावै।।
कौन सुकृत फल तेरौ माई ! बदन–सुधाकर भावै।
कमला कौ पति पावन लीला लोचन प्रगट दिखावै।।
अब चलि मुगध बिलंबु न कीजै चरन–कमल–रस लीजै
ऐसी प्रीति करै जो भामिनि ताकों सरबसु दीजै।।
सरस–निसा सखि पूरन चंदा खेलु बनैगौ माई !
या सुख की परिमिति 'परमानँद' मो पें बरनी न जाई।।

७०४ (सारंग)

चलहि किनि देखनि कुंज–कुटी।
सुंदरस्याम मदनमोहन जहाँ मनमथ–फौज लुटी।।
सुरत सौर में लरत सखी की मुगता–माल टुटी।
उरज–तेज कंचुकि चुरकट भई कटि पट ग्रंथि छुटी।।
चतुर–सिरोमनि सूर नंदसुत लीनी अधर–घुटी।
'परमानंद' ग्वालनि गोविन्द–सँग नीकी जोट जुटी।।

७०५ (सारंग)

चलि री[3] ! मदनगोपाल बुलावै।
तेरौ ई नाँउ लै–लै बेनु बजावै।।

---

१. कौन स्याम नंदसुत कैसौ (ख के अतिरिक्त)
२. अंजन (ख) के अतिरिक्त), ३. सखि ! (क),

इहि संकेत बद्यौ बन महियाँ।
सघन[1] कदंब मनोहर छहियाँ।।
मिलत परम सुख अद्‌भुत लीला।
'परमानँद' प्रभु भावन–लीला।।

७०६ **(सारंग)**

चलि लै मिलऊँ मदनगोपालहि[2]।
भले ठौर बैठे मेरे[3] मोहन कूजत बेनु–रसालहि।।
चतुर सखी मोहन[4] जू की पठई सिखवति है ब्रज–बालहि
मानि मनायौ पाँइ लागति हौं और बात जिनि चालहि।।
माता–पिता बंधु जे गुरु–जन लाज छाँडि भजि लालहि।
'परमाननँद' प्रभु भलौ मानि है चितु दै बा बनमालहि।।

७०७ **(सारंग)**

चलि री ग्वालि ! तोहि बोलत हरे।
एते जतन आवति नांहिन कौन दूती तेरे कान भरे।।
हौं पठई मनुहारि बहुत करि तेरे कारन कुंज खरे।
ऐसी कृपा प्रीति मैं देखी ना जानौं कौन गुन हृदै धरे।।
वे कमला–पति मोहन ठाकुर कहाऽब तुम्हारे गरें परे।
'परमानँद' प्रभु सरबसु दाता जाहि के भाग ताहि कें ढरे।।

७०८ **(सारंग)**

चलि सखि ! कुंज गोपाल जहाँ।
तेरी सपत[5] जहाँ मनमोहन हौं लै जाऊँ तहाँ।।
नीके कुसुम मंद मलयानिल तरु कदंब की छाँहि।
तहाँ निवास कियौ नँदनंदन मन तेरे तन माँहि।।
ऐसी बात सुनत री[6] भामिनि ! तोहि रह्यौ क्यों भावै।
'परमानँद' स्वामी कौ[7] संगम भाग बडे तै पावै।।

---

१. *कुंज–कुटी अरु सीतल० (छ०)*
२. *गोपालै (ङ छ.)–इसी प्रकार अन्य तुकांत–*
रसालै। बालै। चालै। लालै। मालै।, ३. मन (ग.ङ. च) नँदनदंन (घ)
४. *गिरिधर जू (क) माधौ जू (ग. से छ.)*
५. *सौंह, सौंह नंदनंदन पै (बं. १.०८ ।२१)*
६. *ब्रज–सुंदरि !, ७. मनमोहन (बं. १०८ ।२१)*

७०६ (सारंग)

छाँडि न देति झूठौ अति अभिमान।
मिलि रस–रीति प्रीति करि हरि सौं सुंदर है भगवान।।
इहि जोवन धन दिवस चारि कौ पलटत रंग सौ पान।
बहुरि कहाँ इहि अवसर मिलि है गोप–भेष कौ ठान।।
बार बार दूति का सिखावै करहि अधर–रस पान।।
'परमानँद' स्वामी सुख–सागर सब गुन रूप–निधान।।

७१० (सारंग)

मानि री ! मानि मेरौ कह्यौ।
मोहन[1] मदनगोपाल मिले बिनु अंत तऊ परि है न रह्यौ
प्रथम हेमंत मास–ब्रत आचरि कत जमुना–जल–सीत सह्यौ
नंदगोप–सुत माँगि भलौ बरु भाग्य आपुने तैं जु लह्यौ
जो हरि पठई तौ हौं आई पानि पानि ब्रजनाथ गह्यौ।
'परमानँद' प्रभु प्रीति मानि है इहि रस जात अकाथ बह्यौ

७११ (सारंग)

तू को री[2] ! हौं। हरि की दूती।
अति आसक्त रसिक नँदनंदन राधा रैनि जगाई सूती।।
अपने हाथ सयन–रचना रचि राखी है उहि सेज अछूती।
मोसौं व्यौरि कह्यौ रति–नाइक प्रथम समागम तैं सुनि ऊती
गहे चरन उठि चली री ! मुदित ह्वै पिय संकेत सुरत रस–भूती।
'परमानंद' प्रभु दै आलिंगन प्रगट्यौ रूप चतुर धन दूती

७१२ (सारंग)

इतराइ चली थोरे पानी ज्यौं भादौं की नरिया।
कमलनयन सौं मानु करति है अब माई ! तेरौ बरिया
हौं बाबरी मनावनि आई हरि पठई पगु धरिया।
जानि महातमु नंद–सुवन कौ चरन–कमल उर धरिया।।
इहि जोवन धन सदा रमा कौ अधिक रूप गुन भरिया।
'परमानँद' स्वामी गुन–सुंदर पूरन–आनँद–दरिया।।

---

१. *मदनगोपाल लाल गिरिधर बिनु (बं. १३० /१)*
२. *है (क.)*

७१३ (सारंग)

कत तू करति प्रेम–रस–बाधा।
नवरँग गिरिधर[1] लाल लाडिलौ नई दुलहिया राधा।।
सुनि इहि बात भली जो लागै आइ बनी है जोरी।
मरकत मनि कंचन मनु नवघन लाल स्याम तू गोरी।।
पहिली कथा फुनि–फुनि सुमिरौंगी पाँइ परे लट छोरी।
'परमानँद' स्वामी सौं जो रस सो कत डारति तोरी।।

७१४ (सारंग)

तेरी बाट हरि अबलौं चाही।
काहे कौं बिलँबु कियौ तैं राही।।
किसलय–सैन रची हरि कानन।
तोसौं प्रीति बढी चंद्रानंन।।
चलि उठि मुगध ! कान्ह के पासा।
'परमानँद' प्रभु पूरन आसा।।

७१५ (सारंग)

राधा री ! तू मदन–कला।
देखत रूप चिहुटि चित लाग्यौ परम रसिक नँदनंद लाला।।
बार–बार हरि चाह करत हैं जहाँ निकुंज–निवास भला।
जमुना–पुलिन[2] समीर सुसीतल मगु जोवै लागै लागै न पला।।
रति बसंत रति–नाइक राजा भमर–निचय कूजित कोकिला
'परमानँद' स्वामी के संगम हिलत–मिलत सुभग चंचला।।

७१६ (सारंग)

सुनि राधा ! एक बात भली ।
तू जिनि डरै रैनि अँधियारी मेरे पाछै आउ चली।।
तहाँ लै जाऊँ जहाँ मन–मोहन मैं देखी इक बंक गली।
सघन[3] निकुंज सेज कुसुमनि रचि भूतल आछी बिटप–तली
हरि की कृपा कौ मोहि बहुत भरोसौ
प्रेम–चतुर चित करत अली।
'परमानँद' स्वामी कौं मिलि किनि
मित्र–उदै जैसें कमल–कली।।

---

१. दूलह (ग.), २. तौर (घ)
३. कुंद कुसुम कमलनि सिज्जा रची तापै बिछाई बिटप–तली।

७१७ (सारंग)

प्यारी ! तू न करि गहरु कंचुकी कसत।
बेगि चलहि उठि बिलँबु करहि जिनि
सुनि राधे ! नभ–उडुप खसत।।
अपनौ नेम ब्रत तू छाँडहि
कहा भयौ जो लोक हँसत।
मन क्रम वचन सपथ चरननि की
हरि के प्रान तुव माँझ बसत।।
जोवत पंथ अकेले मोहन कुंडल चारु कपोल लसत।
'परमानँद' प्रभु प्रीति जु मानत मरकत मानौं कनक कसत।।

७१८ (सारंग)

ऐसी मैं देखी तन की ईहा।
अधर पीयूष पियावत काहे न
तोकों भयो मदनगोपाल पपीहा।।
बार–बार मुख नाँउ उचारै।
सुनि राधे ! तव रूप विचारै।।
सुहथ कुसुम लै रचि सुख–साई।
बेगि चलहु ब्रजनाथ बुलाई।।
'परमानँद' प्रभु मारगु चाहै।
परै चटपटी रतिपति दाहै।।

७१९ (सारंग)

सखि ! ऐसौ रसु कहाँ पाइबौ।
को ऐसौ प्रीतम को सुंदर अंग–संग मिलि गाइवौ।।
मोहन नयन नासिका मोहन मोहन सुभग कपोल।
मोहन बदन कमल–नयन कौ मधुमिव मीठे बोल।।
मोहन अंग अनंग कोटि द्युति मोहन अंबर–पीत।
मोहन सकल सिंगार कान्ह के मोहन मुरली-गीत।।
मोहन चाल स्यामसुंदर की मोहन बाहु बिसाल।
'परमानंददास' मनमोहन भृगु–पद बनि बनमाल।।

७२० (सारंग)

मो सौं तू काहे कौं लरति।
बार–बार तेरे हित कारन पाइँनु परति।।
अबहि तो[1] लोचन डबडबाइ जल उमगि भरति।
तब जानैगी नंदलाल सों एतौ[2] मानु करति।।
अबहि चपल चलि बेगि चतुर पै कतइ बंक ढरति।
'परमानँद' मोहन बिनु देखे सु को तन–तापु हरति।।

७२१ (सारंग)

तरनि–तनया के तीर गोपाल बजाबत हैं बाँसुरी।
चलि राधे ! जु सुकृत–फल पूजिहै अब मिलिबे कौ गाँसुरी
पहरि लेहि सोने के तरिका रतन–जटित कौ हाँसुरी।
माँग सँवारि नयन कज्जर दै नवल प्रीति करि फाँसु री !
वे गोपाल मन–मोहन मूरति है कमला तेरौ आसु री !
'परमानँद' प्रभु खेल्यौ चाहत रितु बसंत मधु मासु री !

७२२ (सारंग)

तो तें लाल कनाबडे।
मानि मनायौ सारँग–नैनी देहि नवल दल–पाँवडे।।
सौंह सपत करि मेरे आगै जो हौं पीउहि जानों।
'परमानँद' प्रभु माथे हाथ दियौ प्रान–तुल्य वे मानों।।

७२३ (सारंग)

जैसी प्रीति गोपाललाल कें तैसी नाहिंन तेरें।
सुनि री ग्वालि ! मही की माती जाति सुभाव अनेरें।।
इहि रसु सो जानें जो नागरि राजकुँवारि सयानी।
ताकी कहा कसौटी कीजैं कंचन बारह बानी।।
केतकु समुझाई ये नागरि नंद–कुँवरु[3] है देवा।
'परमानँद' स्वामी सौं मिलिये मानौं श्रीपति–सेवा।।

७२४ (सारंग)

राधे ! हरि तेरौ बदनु सराह्यो।
बाबा[4] की सौं हौं जानति हौं इहै ध्यान अबगाह्यो।।

---

१. तू (क. ग.), २. इतनौ (क. ग. घ. ङ. छ.)
३. नँदन (क.), ४. बार बार सुनि सारँग–नैनी इहै० (घ.)

लै दर्पन अपनौ मुख देख्यौ निरखि[3] नैन मुसिकाने।
इहि[4] मैं समुझी सारँग–नैनी तेरे ई हाथ बिकाने।।
करत प्रसंसा बार–बार हरि मोही तैं अति नीकी।
'परमानँद' प्रभु खेल्यौ चाहत परम भाँवती जी की।।

७२५ **(सारंग)**

कान्ह अकेले ई सोवत।
सपने तेरौ मुख देखत[1] तब उठि मारग जोवत।।
सीतल छाँह कदम की बैठे तेरौ ई रूप विचारत।
कबहुँक मौन करि[2] रहत ध्यान धरि कबहुँक द्रिष्टि उपारत।।
नव पल्लव सुमन कदम–दल रचि–रुचि सेज सँवारत।
'परमानँद' प्रभु तेरे हि कारन अति संचित हरि आरत।।

७२६ **(सारंग)**

काहे को करति री ! निसा–गवनु।
तेरौ बदन देखि री राधा ! अति लजात है रोहनी–रवनु
दिवस चलति जब अपनी सखी सँग
सकुचत मराल हरिनी बन छाँडति।
मृगपति अपनी कटि अवलोकत
सब सौं बैरु कहाँ लौं माँडति।।
इहि सरीर तेरौ रचि बिधाता सुहथ सँवारि गोपालहि दीनौ
'परमानँद' प्रभु तेरे हि कारन इहि अवतार केलि–रस कीनौ

७२७ **(सारंग)**

काहे कों ग्वालि ! सिंगार बनावै।
सादी ये बात गोपाल हि भावै।।
एक प्रीति तैं सब गुन नीके।
बिनु गुन अभरन सब ही फीके।।
कनकहि नूपुर लेहि उतारी।
पहिले बसन पहिरि ब्रजनारी।।
हरि नागर सब ही की जानै।
'परमानँद' प्रभु हित की मानै।।

---

१. नैन मूँदि (घ.), २. बाबा को सौं इहि जानति हों (घ.)
३. निरखत (च.), ४. है (ग. से छ.)

७२८ (सारंग)

तोहि मनाबत हौं हारी।
सरबसु जात गरब के घालें बिरचे मदन–मुरारी।।
नील निचोल पहरि तू भामिनि ! नूपुर लेहि उतारी।
तैसै चलि ज्यों कोऊ न जानै ससि–बिनु रैनि अँध्यारी।।
तू ही बिचारि देखि अंतरगति कत इहि माँग सँवारी।
सो ही करहु जैसे नंदकुमार हि लागहु अधिक प्यारी।।
सुनि राधा ! बाधा कत कीजै चतुर मुगध तू नारी।
'परमानँद' प्रभु मिलत प्रेम–रस अपनौ भस्यौ न ढारी।।

७२९ (सारंग)

मनावत हारि परी री माई !
तू चट तैं मठ होति न सुंदरि ! कत हरि लैनि पठाई।।
राजकुमारि होइ तौ जानें कै गुरु होई पढाई।
नंदनँदन कौ जानि महातमु अपनी राखै बडाई।।
ठोडी हाथ चली दै दूती तिरछी भौंहें चढाई।
'परमानँद' प्रभु करौं[1] दुलहिनी तौ बाबा की जाई।।

७३० (कल्यान)

सिखवत केती राति गई।
चंद्र उदै बर दीसनि लाग्यौ तू नहिं और भई।।
सुनि हो मुगध ! कह्यौ नहिं मानति जामी ह्रदै कई।
'परमानँद' प्रभु कौं नहिं मिलती तौ प्रतिकूल दई।।

७३१ (कल्यान)

तेरौ ज्यौ बसत गोविंदे पहियाँ।
हौं[2] जु कहति हों काहे कों दुरावति
जानति हौं परखति पर छहियाँ।।
द्रिष्टि सुभाव बिचारति सुंदरि
वह[3] ई तक लागी मन महियाँ।
'परमानँद' स्वामी की प्यारी
आउऽब[4] आउ चली गहि बहियाँ।।

---

१. करोंगी दुल्हैया, २. काहे कों दुराव करति है री ! मोसों (बं. १३०।१)
३. सो जकि लागि रही (बं. १३०।१), ४. हाव–भाव दै चली (बं. १३०।१)

७३२ (कानरौ)

या हरि तें औरु कौन बडैतौ।
देव–सिरोमनि राज–सिरोमनि कुँवर–सिरोमनि नंद–लडैतौ।।
सुनि राधा बाधा तजि[1] मन[2] की लै मिलऊँ तेरौ मान चडैतौ
'परमानँद' स्वामी सुख–सागर रति–नागर ब्रज–ताप –हरैतौ।।

७३३ (कानरौ)

मानिनि ! एतौ मानु न कीजै।
इहि जोबन अंजुरि कौ जल ज्यों जब गोपाल माँगै तब दीजै
निसि–दिन घटी–बढी नहिं सुंदरि ! जैसें कला चंद्र की छीजै
पूरब[3] पुन्य सुकृत फल तेरौ काहे न रूप नैन भरि पीजै।।
चरन–कमल की सपथ करति हौं ऐसौ जीवन दिन दस जीजै
'परमानँद' स्वामी सों मिलि कें अपनौ जनम सफल करि लीजै।।

७३४ (केदारौ)

तेरी सौं कै अपने बाबा की सौं मेरे मदनगोपाल पियारे
नंदके लाल हृदौ मेरौ बेध्यो लागे है मनसिज–बान अनियारे
निसि अँधियारी कछुवै न सूझत अरुन बसन तेरे देखियत कारे।
'परमानँद' स्वामी लै मिलऊँ ज्यों नहिं जानै नभ के तारे•

७३५ (केदारौ)

सूधे मन मिलि रसिक–सुजानै।
नंदकुमार अटपटौ नागर छाँडि ग्वालि ! तू अपनी बानै
सुंदरता की सींव साँवरौ सुख–निधान सब गुन की खानै
बहु–नाइक बल–रासि देव–मनि कृपासिंधु सबही की मानै
इहि जोवन धन दिवस चारि कौ ताकौ गरबु न करि री ग्वारि !
'परमानँद' स्वामी कौं मिलि अब देखि कमल–मुख नयन पसारि।।

७३६ (केदारौ)

मोहन–मुख की सुनहु द्वै बतियाँ।
बिनती करि हरि हित चित की सब
जो कछु कहि जनाई अधरतियाँ।।

---

१. कत कीजै (ड. छ.), २. जिय (घ.), ३. पूरन (घ)
• कुंभनदास' की छाप से भी मिलता है (ब १३० /१)

नव घन प्रगट सुभट संबर–अरि[1]
नृप–आसन बैठौ करि खतिया[2]।
कुसुम विसिख सर–चाप लिये कर
इंदु–किरनि सोभित पंकतियाँ।।
चमर ढार मारुत बह्यो गुन–निधि
बरुहा नट नृत्तत अनुभतियाँ।
कुंज–वितान गान अलि कुलकत
जस गावत पिक कीर अनतियाँ।।
तव कुच–कोट ओट दुरयो चाहत
मदनमोहन पिय की ए गतियाँ।
'परमानँद' स्वामी कों जितवहि
सुजस प्रगट करि मनसिज–हतियाँ।।

७३७ **(केदारौ)**

देखि सखी ! मोहन–मुख नीकौ।
मोरचंद फरहरात सीस पर तैसै ही बन्यो है अर्द्ध–बिधु–टीकौ
रूप–रासि गिरिधरन छबीलौ पायो तैं परम भावतौ जी कौ
'परमानंद' रसिक नँदनंदन भाग बडौ वृषभानु–नंदिनी[3] कौ

७३८ **(केदारौ)**

उठि काहे न मोहन–मुख जोवै !
बिनु देखें गिरिधरन छबीलौ ऐसी घरी वृथा कत खोवै
इहि जोवन अंजुलि कौ जल ज्यों
बिनु ब्रज–नाथ वृथा छीजै री।
विद्यमान अपने इन नैननि वह मुख–कमल देखि जीजै री !
मेरे कहे तजि मान लाडिली ! काहेकौं करति सखी अनभायौ
'परमानंददास' कौ ठाकुर तजि बैकुंठ खेलनि ब्रज आयौ

७३९ **(केदारौ)**

राधे ! तू देखि बन के चैन।
भृंग कोकिल शब्द सुनि करि प्रगट प्रमुदित मैन।।

---

१. रिपु (ग.), २. घतियाँ (ग)
३. तनी कौ (ग. घ.)

कमल कुमुद–सुगंध सीतल भामिनी सुख–सैन।
इहै पुन्य अगाध कौ फल तू जु बिलसति ऐन।।
लाल गिरिधर मिल्यौ चाहत मधुर मनोहर बैन।
'दास परमानंद' प्रभु हरि चारु पंकज नैन।।

७४० **(कानरौ)**

हरि की आनँद केलि।
मदनगोपाल निकट करि पाए ज्यों भावै त्यों खेलि।।
स्यामसुँदर की भुजा मनोहर अपने कंठ लै मेलि।
प्रेम–मगन अरु सावधान है छूटे[1] बार सकेलि।।
स्याम–तमाल नंद कौ नंदन तू जु कनक की बेलि।
इहि लपटानि 'दास परमानँद'मुगति पाँइ गहि ठेलि।।

७४१ **(केदारौ)**

आजु सखी ! मोहन इहि कुंज।
जुव जन तन मन करि न्योंछावरि सुनि मुरुली की गुंज।।
तैं रहि इहाँ कहा कियौ बावरी ! तजि सुख परम निधान
देखि बिलास जानती तब तुम इहै प्रवीन सुजान।।
एक सुकाज होत अति तेरौ मोपें कहत न आवै।
सुनि दुख प्रबल होइ चित–अंतर जिय तें तनु बिसरावै
हा हा सखी ! कहों पाँइ लागों बिनहि सुनें अब मरिये
सुनि करि मन उपचार बनै कछु तिहि बिधि जतन सुकरिये
उर अति गोप्य गोप्य गोप्य हु तें, गोप्य भाव धरि कहिये
जो[2] तू चतुर सयानी नागरि ! समुझि सैन मन गहिये।।
मारुत–सुत–पति उद्यम जानि करि ता रिपु मध्य निवासै।
ता उर बसि दुहुँ बिधि सजनी ! भूलि हू तोहि न त्रासै।।
समुझि सैन उठि चली बिचच्छन जहाँ रास–रस वृंद।
देखत रूप भयौ मनु औरै पूरन 'परमानँद'।।

---

१. छूटी अलक

२. या ब्रज में तू ही बडभागिनि कह्यौ बचन निरबहिये (बं. १३०।१)
जो तू समयी और न पावै समुझि समुझि मन गहिये (बं. १६५।१६)

७४२ (आसवरी)

सुनि मेरौ बचन छबीली[1] राधा !
तैं पायौ रस–सिंधु अगाधा।।
जे रस निगम नेति–नेति भाख्यौ।
ता कौ तैं[2] अधरामृत चाख्यौ।।
सिव विरंचि के ध्यान न आवै।
ताकौं[3] कुंजनि कुसुम बिनावै।।
तू वृषभानु गोप की बेटी।
मोहनलाल भाँवते भेटी।।
तेरौ भाग्य मोहि कहत न आवै।
कछु एक रस 'परमानँद' गावै।।

७४३ (केदारौ)

तो सी त्रिया नाहिंन भुवन भटू री।
रूप-रासि गुन[4]-रासि रसिक-मनि जाहि भए नँदलाल लटू री!
यौं कर सुदृढ करि गाँठि दई बिधि सुरँग चूनरी पीत–पटूरी
'परमानँद' स्वामी रति–नाइक तू नागरि वे नागर–नटू री •

७४४ (सारंग)

कैसें माई ! रूसिवौ बनै।
नंदनँदन की बहुत सखिनि में मो सी कौन गिनै।।
तुम जु कहति हौ बात अटपटी राखौ अपनौ सयान।
मन क्रम वचन लाल गिरिधर सौं तजै बनै अभिमान।।
चतुराई ता आगें कीजै जो प्रभु होइ अग्यान।
जा पर प्रीति 'दास परमानँद' सहि[5] रहिये जु गुमान।।

७४५ (केदारौ)

राधा ! माधौ कौ मुख नीकौ।
देखि नयन भरि मोहन मूरति मिल्यौ भाँवतौं जीकौ।।

---

१. *लडैती (ग.), २. अधर–सुधा–रस (ग.)*
३. *तापें (ग. ङ. छ)*
४. *रस*
• *'कृष्णदास' की छाप से भी (बं. २३।१ तथा ७०।२)*
५. *हँसि रहिये गुन मान*

सघन निकुंज–कुंज द्रुम–बल्ली[1] ठौर भलौ तैं पायौ।
तेरी चौंप प्रीति मैं जानी आनि समीप बसायौ।।
अब जिनि टरनि देहु तुम ह्याँ तै जो भावै सो कीजै
'परमानंददास कौ ठाकुर सरबसु दै रसु लीजै।।

७४६ (गौरी)

स्याम जू की देखिबे की बार।
चलि सखि ! दौरि देखि आई हौं ठाडे निकसि दुबार।।
मंद माधुरी छाँडि चलन सखि ! काहे करति झमार।
फुनि अब ही भीतर उठि–जैहैं मोहन नंद–कुमार।।
सिर पर खौरि लाल उपरैना हाथ कुसुम की डार।
'परमानँद' गिरिधरन लाल पर बारों कोटिक मार।।

७४७ (गौरी)

राधे ! बोलत नंदकिसोर।
ललित त्रिभंगी स्यामसुंदर निर्तत[2] ज्यौं बन मोर।।
छिनु–छिनु बिलँबु करति है सुंदरि ! क्योंऽब रहति मन तोर
आनँदकंद चंद–वृंदावन तू करि नैन–चकोर।।
कहा कहौं तेरे भाग की महिमा आपु न गनत न और
'परमानँद' प्रभु पैं चलि भामिनि ! लै मिलि उरज[3] अँकोर

७४८ (सारंग)

चलि तू मदनगोपाल बुलाई।
छाडि बिलंबु मिलहु प्रीतम सों हठ में कौन बडाई।।
वृंदावन में बंसीवट–तर बैठे कुँवर कन्हाई।
नटवर–भेष धर्‌यौ सुर मोहति लीला बरनी न जाई।।
तेरे काज आपु नँद–नंदन रचि–रुचि सेज बनाई।
'परमानँद' स्वामी रति–नागर गति में गति दिखराई।।

७४९ (सारंग)

तेरौ नाँउ लै–लै गावै तू चलि भामिनि ! स्याम बोले।
वे बैठे देखौ वृंदावन की सोभा ठौर–ठौर द्रुम फूले।।
कोकिला–नाद मन आनँद भँवर बिहंगम भूले।
नाना पच्छी सब्द–रासि रचि सकल बेलि केसू फूले।।
उनमद जोवन–मद कोलाहल यहि औसर है नीकौ।
'परमानँद' स्वामी प्रथम समागम मिल्यौ भाँवतौ जी कौ।।

---

१. बेली (ग.), २. नृत्तत (घ), ३. प्रान (घ. ङ)

७५० (कान्हरौ)

क्यों न मिलै मन दै मोहन कौं
मान कहा गहि रही री भामिनी।
सुंदरस्याम बिना सुनि सजनी !
वृथा बही सब जाति जामिनी।
मान किये तै कहा सचु पावति
सोच बढावति हृदय कामिनी।
'परमानँद' प्रभु गिरिधर पै चलि
प्रमुदित मन गजराज–गामिनी।।

७५१ (श्री)

तरुन घनस्याम तन बसन वर दामिनी
इन्द्र–धनु उदित मानौं बनमाला बनी।
गरजत मंद धुनि हरि गिरि सुंदरा
भक्ति चात्रक कुमुदिनी प्रीति मनी।।
नंदनँदन देखि विगत मानस–बिथा
गोपिका–प्रेम–जल नदी बाढी।
'दास परमानंद' सिंधु जादौ राइ
मिलहु अनुसरी रहि न गाढी।।

दूती–वचन, प्रभु–प्रति–

७५२ (आसावरी)

इहि प्रसंग ऐसौ है माधौ ! मानवती मनाइये।
जो पें तुम्हारे जिय भावत है तौ उहाँ लौं चलि आइये।।
कहा भयौ जो वह नहिं आई तुम्हारे लाड की गरबी।
अबला के जिय[1] मान महातमु तातैं ठानी अरबी।।
दूती बचन कहै जे सनमुख जो तैं कही सो मानी।
'परमानँद' स्वामी रति–नागर नीकी बात हि[2] जानी।।

७५३ (सारंग)

अनमना बैठी ए रहै।
अंतरगत की बिथा मोहिनी काहू सौं न कहै।।

---

१. मन (ग.), २. हितानी (घ. ङ.)

सूखौ[1] बदन अधर कुम्हिलाने नैननि नीर बहै।
रजनी निंदा करत चंद्र की अलकावली[2] दहै।।
तुम्हारे बिरह बियोग राधा बासर–धाम सहै।
बेगि मिलहु 'परमानँद' स्वामी दूती बचन कहै।।

७५३ (सारंग)

मुगध मनाए की चाहति बाट।
चलहु गोपाल ! कृपा करि उहिं बन जहाँ गोधन के ठाट
मेरे कहें वहै नहिं आवति करी बहुत मनुहारि।
तुम ही सौं जु है गुपत बतौवा जानत रसिक मुरारि।।
सो अभिमान–रस है बैठी मौन धरै नहिं बोलति।
कठिन सुभाव अहीर[3] की बेटी उहाँतें नाहिंन डोलति
हँसि ब्रजनाथ कह्यो दूती सौं नाहिंन तेरे मान।
'परमानँद' प्रभु रसिक–सिरोमनि बैठि रहे भगवान।।

७५४ (सारंग)

गोपाल ! मनाए की चाहति बाट।
चलु ब्रजनाथ ! कृपा करि उहि बन जहाँ गोधन के ठाट
तुम जु कह्यो बचन हँसि बोले वा के मन है उचाट।
बिलख बदन चिंतातुर तब तैं मथति न गोरस–माट।।
दूती–बचन कहे जब सनमुख लगी प्रेम की साट।
'परमानँद' प्रभु रसिक–सिरोमनि लोचन काम–कपाट।।

७५५ (सारंग)

संदेसौ राधिका कौ लीजै।
तुम दुरि बैठे सघन कुंज मँहि ऐसौ खेलु न कीजै।।
आइ फिरि गई चाहि सब कानन चंद्र–बदनि सकुमारी।
रहे मौन धरि ताहि देखि[4] हरि कठिन काम–सर–मारी।।
बेगि चलहु हरि ! बिलँबु करत[5] कत वह कदंब–तर ठाढी
'परमानँद' प्रभु तुम्हारे रूप सौं प्रीति निरंतर बाढी।।

---

१. सूख्यौ (घ), २. किरनावली (ग. घ.),
३. अभीर (क. ङ. छ.)
४. देखें (ख.), ५. करहु (ग. ङ. छ.),

७५६ (बिलावल)

दधि–सुत–बदनी कोप–भरी।
अंबर खीझि लेति ब्रज–बाला सारँग बाजु[1] लरी।।
तब नागरि पें इहि मति उपजी लै मनि हाथ धरी।
ग्रसित बेर भई नहिं बाला उनि तें चतुर खरी।।
धरनि चंप रस[2] जब आये उदयाचल जु डरी।
'परमानँद' प्रभु तरसन अति सुख सरनागत उबरी।।

७५७ (सारंग)

बहुत रही समुझाइ मनायौ मानति नाहिं गोपाल।
आपुनि ही पाँउ धारि मनावहु गिरिधर गज-गति-चाल।।
प्रीति की रीति रँगीलौ जानें मान धर्‌यो नँदलाल।
'परमानंददास' कौ ठाकुर हठ छाँडहु ब्रज–बाल।।

७५८ (सारंग)

यों रहे निसिदिन तेरे ही ध्यान मध्य आली तैं तो बस करि लीने ललना।
अति चतुर महा री! ता तें तू प्रानप्यारी तो बिनु पिय कों परति न कलना।।
एक टक मगु जोवत हैं ठाढे नैन निमेषनि लागति पलना।
गिरिधरलाल पिय तो ही सौं प्रेम नेम काहू सों कीनी है प्रीति अचल ना[3]।।

मानापनोदन–

७५९ (सारंग)

कैसें बनें माई मानु करत।
सखि ! अपमान तऊ मनमोहन पाइँनु परत।।
झुकि बोलत हँसि–हँसि मुख लागत आगें तें न टरत।
रोकत हू अनुसरत निहोरत उर–अंचर पकरत।।
सब सहि प्रीति सबाई मानत एकौ चितु न धरत।
'परमानँद' प्रभु रोस तजि इहाँ मनु उलटि धरत।।

७६० (सारंग)

तैं मेरौ भाँवतौ न कीनौं।
सुनि इहि बात स्यामसुंदर की
उर गहि गाढौ आलिंगन दीनौं।।

---

१. सों जु, २. सदस, ३. इसमें छाप नहीं है।

बेनु बजाइ बुलाई राधा आई तहाँ जहाँ बंसीबट।
इतनौ गहरु तैं कहाँ लगायौ मदनगोपाल गही लीला लट
ऐसी प्रीति परस्पर बाढी अति आसक्त भयौ सुंदर–चित।
'परमानँद' प्रभु बिलगु न मानहु तुम कारन संच्यो जोवन–बित।।

७६१ **(सारंग)**

स्यामा जू कौं स्याम मनाएँ ल्यावत।
ज्यों–ज्यों सुंदरि[1] चलति हरें–हरें त्यों–त्यों पाछें आवत।।
कछु जु लच्छनता रही है मानकी तातैं अधिक छबि पावत
मानहुँ मत्त मतंग–मते तैं डरपत रहत महावत।।
कबहुक आगै कबहुक पाछै नैन सौं नैन मिलावत[2]।
कबहुक पथ कौ तनक तनूका दूरि क़रन कहँ धावत।।
अति[3] संकित मोहन उर–अंतर बानिक कछुक[4] बनावत।
इहि[5] लीला–बिनोद गिरिधर कौ जन परमानँद' गावत।।

७६२ **(सारंग)**

कमल–नयन राधिका हि मनावत।
मृग–नैनी–मुख निरखि मनोहर नहियाँ में केतौ सचु पावत
इतनौ ई भेद प्रीति कौ लच्छन स्यामसुँदर अंतरगत भावत
एते मान मनायौ न मानति हँसति चतुर बलबाँह छिडावत
उठि जब चले चरन लपटानी भीत भए मुख बोल न आवत
काम-केलि अपने गिरधर[6] की प्रमुदित जन 'परमानँद' गावत।।

७६३ **(सारंग)**

सुनि संकेत उठी हँसि प्यारी।
छाँडि मान गुन मानि हरषि मन
चली चपल बुधि सौं छबि वारी।।
यौं लिपटी पिय केलि सों मानों
स्यामतमाल के निकट लता री।
दोऊ पौढे कुसुम–सेज पर 'परमानंददास' बलिहारी।।

---

१. कुवरि चलति हौरें हौरें, २. जुडावत
३. अतिसै संक मोहन अति आतुर, ४. बहुत (क. ग. च.)
५. परम रहसि गिरिधर–रस–लीला, ६. मोहन (ग. घ. ङ. छ.)

७६४ (सारंग)

आवत लाल अरी चलि माई !
छूटि जाइगी टेक रावरी करौ हो कृपा तैं नाच नचाई।।
यह सुनि बचन चली पिय पै हँसि
ज्यों सरिता बाहर में धाई।
दोऊ मिलि पौढे सुखद सेज पै 'परमानँद' दास बलि जाई।।

७६५ (सारंग)

यह सुनि वचन पिया पै आई।
मिली धाइ अकुलाइ अंक भरि मानहुँ रंक महानिधि पाई
मिलि पौढे संकेत कुंज में नव कुसुमनि की सेज बनाई
'परमानंददास' कौ ठाकुर विविध केलि कीनी बनि भाई

७६६ (नायकी)

रूसे ही रहौंगी हौं तौ रूसे ही रहौंगी।
जब गृह आवेंगे स्याममनोहर
तिनि सौं हू बाँके बचन कहौंगी।।
जो वे मनावेंगे तो हौं नहीं मानौगी मनमथ–बान सहौंगी
'परमानंददास' कौ ठाकुर वे परें पाँइ हौं तौ हठनि गहौंगी

रास–

७६७ (आसावरी)

•आजु नीकौ जम्यो राग आसावरी।
मदनगोपाल बेनु नीकौ बाजे नाद सुनत भई बाबरी
कमलनयन सुंदर ब्रज–नाइक सब गुन–निपुन कथा है रावरी
सरिता थगित ठगे मृग पंछी[1]
खेवट चकित चलति नहिं नाव री।।
बछरा खीर पिबत थन छाँड्यौ[2]
दंतनि तृन खडति नहिं गाव री।
'परमानँद' प्रभु परम विनोदी इहै मुरुली–रस कौ प्रभाव री

• *मोहन ! आजु नीकौ (क.) से भी प्रारंभ है।*
१. पंखी (क. ग. ङ), २. छोर्‍यो (ग.ज.)

७६८ (गौरी)

आईं हम पाँइनु परन।
सोई करहु जैसे संग न छूटै राखहु (अपनी) सरन।।
जब तुम बेनु बजाइ बुलाईं अब कैसें चतुराई।
तुम्हारौ भजन पाप कौ कंदन इहि तो निगम बताई।।
चलत नहीं जु चरनगति थाकी मन न चलै ब्रजवासा।
'परमानँद' प्रभु हौ[1] उदार तुम छाँडहु वचन उदासा।।

७६९ (टोडी)

बन्यौ रास–मंडल में माधौ गति में गति उपजावै हो !
कर कंकन झनकार मनोहर प्रमुदित बेनु बजावै हो !
स्याम सुभग तन पर दच्छिन कर पूजत चरन–सरोजै हो
अबला–वृंद अबलोकत हरि–मुख नयन–विकार मनोजै हो
नील पीत पट चलत चारु नट रसना नूपुर कूजै हो !
कनक कुंभ–कुच–बीच पसीना मानौं मोतिनि[2] पूजै हो !
हेम–लता तमाल अबलंबित सीस–मल्लिका फूली हो !
कुंचित केस–बीच अरुझाने जानौं अलि–माला भूली हो !
सरद बिमल निसि चंद बिराजित क्रीडत जमुना–कूले हो
'परमानँद' स्वामी कौतूहल देखत सुर–नर भूले हो !

७७० (गौरी)

गोपाललाल सौं[3] नीके खेली।
बिह्वल भई सँभार न तन की सुंदरि छूटे बाल सँकेली।।
टूटत हार कंचुकी फाटत फूटत चुरी खसत सिर–फूल।
बंदन मिटत सरस उर–चंदन देखत मदन महीपति भूल।।
बाहु–बंध परिरंभन चुंबन महा महोत्सव रास–बिलास।
सुर बिमान सब कौतुक भूले कृष्ण–केलि 'परमानँददास'।।

---

१. *होहु उदार तुम राखहु चरन–निवासा (क. घ. ङ. च. छ.)*
होहु उदार चित राखहु चरननि पासा (ग.)
२. *मोतिन हर पूजै हो !*
३. *सँग (अ)*

अन्तर्धान–

७७१ (सारंग)

अब कैं जो लाल मिलै अचरा गहि झगरौं री।
काहे तैं तुम छाँडि गए संग लागि डगरौं री।।
जुवतिनि कौ इहि सुभाव मान करत सोभा।
नागर नँदलाल कुँवर काहे चित–छोभा।।
बाँधौ कुच–भुजनि–बीच नैन–बान मारौं।
'परमानँद' प्रेम लरौं जीतौं कै हारौं।।

७७२ (सारंग)

माई ! डार–डार पात–पात बूझति बनराजी।
हरि कौ पथ कोउ न कहै सबनि मौन साजी।।
बसुधा जड–रूप धस्यौ मुख हूँ न बोलै।
हरि कौ पद परसु भयौ संगु लागि डोलै।।
'परमानँद' स्वामी गोपाल निठुर भए माई।
हमारौ गुन–दोषु जानि कीनीं चतुराई।।

७७३ (सारंग)

पूछति है खग–मृग द्रुम–बेली।
हमें तजि गए री ! गोपाल अकेली।।
अहो चंपक ! मालती ! तमाला।
तुम्हें सपरसि[1] गए नँदलाला।।
ज्यों गजराज बिना बन–करनी।
कृष्णसागर बिनु व्याकुल हरनी।।
'परमानँद' प्रभु मिलहु न आई।
तुम्हारे दरस बिनु हंस उडाई।।

७७४ (सारंग)

ग्वालिनि ! अनमनी सी काहे ठाढी !
दारुन पीर मदन[2] की बाढी मदनगोपाल अकेली छाँडी।।
तैं ही रसिकिनि ! रही सयानी जिहिं सनेह प्रभु बन लै आयौ
नैंकु छुडाइ कछु कियौ माधौ सौं तुरतहि कियौ आपुनौ पायौ
चलिरी सखी ! जाइ ढूढें बन–बन चरनकमल के अंक निन्यारे
ध्वजा बज्र अंकुस जब रेखा कहाँ दुरहिंगे कान्हर प्यारे।।

---

१. परसि कहँ, २. बिरह

लोचन सजल प्रेम अति आतुर सूखे अधर चंद–मुख गौ[1] घटि।
'परमानंद' बिरहिनी हरिकी पीउ–पीउ करति अनाथ रही लटि

७७५ (कानरौ)

•जिहि तें रस रहै रसिक–कुँवर सौं
सोई सयानी ! तुम्ह करहु बसीठी।
इहि अपराधु पर्‌यौ अनजानत लाडकडी कछु बात उचीठी
काँधारोहनु माँगि सखी री ! नंदनँदन सों मैं कीनी ढीठी
जुवति–जाति दोस कौ भाजनु समुझति नहिं कछु करई[2]–मीठी।।
अब अभिमान करौं नहिं कबहूँ तेरे हाथ देऊँ लिखि चीठी
'परमानँद' प्रभु आनि मिलाबहु कमल–नयन की महिमा दीठी।।

महारास–

७७६ (गौडी)

टूटि परी मोतिनि की माला ढूँढति फिरति सकल ग्वाली
मुकुलित कुसुम–माल कच बिगलित निरखि हँसे बनमाली
रास–बिलास गहैं कर–पल्लव इक–इक भुज ग्रीवाँ मेली।
बिच–बिच गोपी इक–इक माधौ नृत्तत संग सहेली।।
सरद विमल निसि चंद बिराजित नृत्तत नंदकिसोरा।
'परमानँद' प्रभु बदन–सुधा–निधि भामिनि नैन–चकोरा।।

७७७ (सारंग)

कर गहि अधर धरी मुरली।
देखहु परमेसुर की लीला ब्रजबनितानि की मन–चुरली।।
जाकौ नाद सुनत गृह छाँड्यो
प्रचुर भयौ तन मदन बली।
जिनि सनेह सुत–पति बिसराए
हा हरि ! हा हरि ! करति चली।।

---

१. *ग्यौ (क.)*
• *जा तें रस० से भी प्रारंभ है।*
२. *करुई*

बिहँसित बदन प्रफुल्लित लोचन
रबि–उद्योत जनु कमल–कली।
'परमानंद' प्रीति पद–अंबुज कृष्ण–समागम बात भली।।

७७८ (गौडौ)

बन्यो लालने[1] रसिक राधे ! सरद चाँदनि–राति।
तत्त थेइ थेइ तत्त थेई करत गोपीनाथ।।
इक–इक गोपी इक–इक माधौ बनी अनोपम भाँति।
जै–जै सब्द करत सुर–मुनि–जन बरसत कुसुमनि जाति।।
रथ टेकि ससि हारि रह्यौ सिर पर होत नहीं परभात।
'दास परमानंद' प्रभु हरि निरखि अनँग लजात।।

७७९ (केदारौ)

आली री ! रास–मंडल–मध्य निर्तत[2] मदनमोहन
अधिक प्यारौ[3] लाडिली रूप–निधान।
चरन–चाल हस्त–भेद मिलवत[4] आछी जति
भाँति सों लेत नैननि ही में मान।।
दोऊ[5] मिलि राग अलापत गावत
होडाहोडी उघटित विकट तान।
'परमानँद' स्वामी[6] निरखि और रीझि रहीं
गोपी–जन वारति हैं निज तन मन प्रान।।

७८० (सारंग)

माधौ चाचरि खेलें ही खेलें री ! जमुना के तीर ।
रास-बिलासी चाचरि खेलें ही गोकुल-नाइक जमुना के तीर
कुमकुम–बरनी गोपिका केसौ री ! घनस्याम–सरीर।
नील–पीत–पट–मंडिता नाँचत री ! वे प्रेम–गँभीर।।
बीच–बीच गोपी बनी बिच–बिच री ! वे बने हैं मुरारि।
मरकत-मनि कंचन-मनी माला हो ! मानों गुही है सँवारि।।

---

१. *तालिम (क.)*
२. *मंडित (ग.), ३. सोहत*
४. *निरतत आछी–आछी भाँति नैन–भौं–विलास–मंदहास नैननि ही मान (बं. १२७।१०)*
५. *नाचत गावत दोउ रीझि परस्पर उरप–तिरप मान लेत विकट (बं. १२७।१०)*
६. *प्रभु नवकिसोर निरखि–निरखि ललितादिक (बं. १२७।१०)*

किंकिनी नूपुर बाजै ही सबदहि री ! कोलाहल केलि।
कुनित बेनु ब्रज[1]–नाइका लटकत लाल भुजा गल मेलि।।
कर–तल ताल बजावें ही गावैं री ! वे गीत रसाल।
मदन–महोदै मन रह्यौ[2] लीला–सागर गिरिधरलाल।।
एकत पान खवावैं ही एकजु माँगैं देहु उगार।
एकत मुख चुंबन करैं एकनि भूले टूटे हार।।
चंद भूलि कौतुक रह्यौ नर–नारी मोहे मुरुली के नाद।
थाक्यौ रथ कैसे चलै ब्रज–जुवतिनि बिरमायौ बाद।।
चढि बिमान सब देवता बरसनि री ! वे लागे फूल।
जै–जै–जै जदुनंदना रास रच्यौ रति–नाइक भूल।।
सो प्रसाद हम कौं दियौ हरि परिरंभन बाहु पसारि।
'परमानँद' प्रभु श्रीपति पुन्य–पुंज–कृत[3] गोकुल–नारि।।

७८१ **(श्री)**

निर्त्तत मंडल–मधि नंदलाल।
मोर–मुगट मुरली पीतांबर उर[4] गुंजा बनमाल।।
मुरज[5] मृदंग संगीत बजत हैं ततथेई बाजत[6] ताल।
उरप तिरप नाचत नटनागर गंध्रव गुनी रसाल।।
बाम भाग[7] वृषभानु–नंदिनी गज–गति मनहुँ मराल।
'परमानँद' प्रभु की छबि निरखत सुख पावत ब्रज–बाल।।

७८२ **(केदारौ)**

रास रच्यो बन कुँवर–किसोरी।
मंडप विपुल सुभग वृंदावन जमुना–पुलिन स्यामघन–गोरी
बाजत बेनु रवाब किन्नरी कंकन नूपुर किंकिनी–सोरी।
ततथेई ततथेई सब्द उघटत पिय
भले बिहारी–बिहारिनि–जोरी।।
बरुहा मुकट चरन–तट आवत गहै भुजनि में भामिनि–भोरी
आलिंगन चुंबन परिरंभन 'परमानँद' डारत त्रिनु तोरी।।

---

१. मधि (अ), २. हस्यो (ग.)
३. ब्रज (घ), ४. गरै (अ), ५.ताल (ग.)
६. ततथेई बोलत लाल (ग)
७. अंग (ग.)

७८३ (बिलावल)

सरद–निसा–ससि–सोभा हरे–हरे।
कमल–नयन मन लोभा हरे–हरे।।
रवि–तनया के तीरा। बिपिन बसे आभीरा।।
सोवन जूथिका फूली। कुंज–कुटी पर झूली।।
अति संकीरन द्वारा। बैठे नंद–कुमारा।।
किसलय–तलप बिछावै। रचि–रुचि कुसुम बनावै।।
मत्त मधुप गुंजारा। मनु गत मदन–बिकारा।।
मृगमद भाल–बनाई। हौं तोहि लैनि पठाई।।
गावत तुव गुन–गीता। है त्रैलोक्य पुनीता।।
प्रथम उबटि सिर खोरी। ग्रथित सुरँग पट डोरी।।
भाल तिलकु दै स्यामा। कमल–नयन की बामा।।
स्रुति ताटंक सँवारी। भौंह चितैनि अनियारी।।
चपल नयन मसि–रेखा। मधुकर मत्त बिसेखा।।
नक–बेसरि कौ मोती। मेटत दिन–मनि–जोती।।
चिंबुक चारु कंबु–ग्रीबा। सुंदरता की सींवा।।
उलटि धरे मनु ताला। कंचुकी–मध्य बिसाला।।
पहिरें मोतिनि–माला। रिझवति मदनगोपाला।।
नीबी नाभि सुदेसं। मोहन मदन–प्रबेसं।।
मृग–रिपु कृस कटि नारी। जघन नितंबनि भारी।।
गति गजराज मरालं। लटकट बाहु–मृनालं।।
नूपुर चरन सुढारं। पिय–सनमुख पाँउ धारं।।
अंग–अंग सुकुवाँरी। रसिक कुँवर की प्यारी।।
स्रवन सुनत मृदु बानी। ब्रज–सुंदरि अकुलानी।।
चपल चली पिय–तीरा। मथत मदन की पीरा।।
नवल कुँवर कों भेटी। मानों द्रुम–लता लपेटी।।
कुच–जुग बसन दुरावै। गिरिधर–प्रेम बढावै।।
नीवी–ग्रंथि न खौलैं। नेति–बचन मृदु बोलै।।
सुरति हिंडोरे झूली। मानहुँ कुमुदिनी फूली।।
रसना कोटिक पाऊँ। कोटि जनम भरि गाऊँ।।
मदनमोहन जू की जोरी। उपमा कहै सो थोरी।।

क्रीडत कुंजबिहारी। भक्तनि के हितकारी।।
चरन–कमल–रज पाऊँ। मुदित बिमल जस गाऊँ।।
'परमानँद–ब्रत कीनौ। पद–अंबुज चित दीनौ।।

७८४ (टोडी)

निर्तत मोहन रास बिलास।
गुन गावति वृषभानु–नन्दिनी उघटत सब्द ताथेई तास।।
करतल ताल मिलत मुरली–सँग बिच–बिच मोहन–मुख–मृदु–हास।
जै–जै करत कुसुम सुर बरषत गुन गावत 'परमानँददास'।।

जल–क्रीडा–

७८५ (टोडी)

करत गोपाल जमुना–जल–क्रीडा।
सुर नर असुर थकित भए देखत
सिरि गई तन–मनजा[1] ब्रीडा।।
मृगमद मलय[2] कुमकुमा केसरि[3]
अगर कपूर सुबास बहु भुरकनि।
कुच–जुग गगन[4] मगन नँदनंदन
कोमल[5] पानि परस्पर छिरकनि।।
निरमल सरद–काल–रितु[6]–सोभा
बरषत स्वाति–बिंदु–सम मोती।
'परमानंद' कनक[7] छबि गोपी
मरकत–मनि गोविंद तन[8] जोती।।

७८६ (सारंग)

मोहि मिलनि भावै जदुवीर[9] की।
सरद–निसा पूरन ससि उदौ[10] करि खेलनि जमुना–तीर की
हरि हम कौं हम हरि कौं छिरकति पैसि[11] दफोलनि नीरकी
हँसि[12] कर खेंचि लेत ऊँडे[13] जल अंक[14] माल भुज भीर की।।

---

१. जिय., २. तिलक., ३.चंदन रसिक, ४.मगन रसिक,
५. कमल., ६. कृत, की, ७. कंचन–मनि, ८. मुख,
९. बल–वीर, १०. उदए, ११. पैठि
१२. हरि (ड. छ.), १३. औंडे (ग.), १४. अंस भुजा भरि भीर की,

जबै निकसि होत जल ठाढे निरखि अँगोछनि चीर की
'परमानँद' स्वामी रति–नागर बलि–बलि स्याम–सरीर की

७८७ (सारंग)

बैठे घनस्यामसुंदर खेवत हैं नाउ।
आजु सखी ! कान्ह–संग खेलनि कौ दाउ।।
पथिक हम खेवट तुम लीजैं उतराई।
बीच धार–माँझ रोकि मिस कै डुलाई।।
जमुना गंभीर नीर अति तरंग लोल।
गोपिनि प्रति कहनि लागे मीठे मधु[1] बोल।।
डरपति हौं स्यामसुंदर राखहु पद–पास।
एहि[2] रस मिल्यौ चाहै 'परमानँददास'।।

युगल–रस–वर्णन–

७८८ (सारंग)

राधा बैठी तिलकु सँवारति।
मृग–नैनी कुसुमायुध के डरु सुभग नंद–सुत–रूप बिचारति।।
दरपन हाथ सिंगारु बनावति बासर–जाम जुगति यौं डारति
अंतर प्रीति स्यामसुंदर सौं प्रथम समागम केलि सँभारति।।
बासर–गत रजनी ब्रज आवत मिलत लाल गोवरधनधारी
'परमानँद' स्वामी के संगम रति–रस–मगन मुदित ब्रजनारी

७८९ (सारंग)

• नवरंग कंचुकी तन गाढी।
नव रँग सुरँग चूनरी ओढे[3] चन्द्र–बधू सी ठाढी।।
नव रँग मदनगोपाललाल सौं प्रीति निरंतर बाढी।
स्याम–तमाल लाल उर लपटी कनक–लता सी आढी।।
सब अँग[4] सुंदर नवलकिसोरी कोक–कला–गुन पाढी।
'परमानँद' स्वामी[5] की जीवनि रस–सागर मथि काढी।।

---

१. मृदु (ग.), २. याही मिस (क),
• सुरंग....से भी प्रारंभ है,
३. पहिरें, ४. गुन–सींव चतुर नागरी (बं. ३४।७)
५. गिरिधरनलाल हित

७६० (सारंग)

राधा रसिक गोपाल[1] हिं भावै।
सब गुन–निपुन नवल अँग सुंदरि
प्रेम–मुदित कोकिल–सुर गावै।।
पहिरि कसूँभी कटाव की चोली चंद्र–बधू सी ठाढी सोहै।
सावन मास भूमि हरियारी मृग–नैनी देखत मन मोहै।।
उपमा कहा देउँ को लाइकु केहरि के वाही मृग लोचनि
'परमानँद' प्रभु प्रान-वल्लभा चितवनि चारु काम-सर-मोचनि

७६१ (सारंग)

राधा माधौ सों रति बाढी।
चितवति तहाँ जहाँ नँदनंदन सब तें लियौ मन काढी।।
एक द्यौस जमुना–मज्जन करि निकसि तीर भई ठाढी।
सुकवति बार बाम कर सिर धरि बनी है कंचुकी गाढी।।
स्यामा नवल कनक–चंपक–तन नागरि मनसिज गाढी।
चाहति मिल्यौ प्रानप्यारे कौं 'परमानँद' गुन–आढी।।

७६२ (सारंग)

राधा माधौ बिनु क्यों रहै।
एक स्यामसुंदर के कारन और सबनि की निंदा सहै।।
प्रथम भयौ अनुराग द्रिष्टि तैं इत मोहन मन हर्‌यौ।
पिय के पाछें लागी डोलै बंधु–वरग सौं बैरु पर्‌यौ।।
मनक्रम–बचन और गति नाहीं बेद–लोक–लज्जा तजी।
'परमानँद' तब तें सचु[2] पायौ जब तैं पद–अंबुज[3] भजी।।

७६३ (सारंग)

अति रति स्यामसुँदर सौं बाढी।
देखि सुरूप गोपाललाल कौ रही ठगी सी ठाढी।।
घर नहिं जाइ पंथ नहिं रेंगति चलनि–बलनि गति थाकी
हरिनी ज्यों हरि कौ मगु जोवति काम–मुगध मति ताकी
नैनहु नैन मिले मनु अरुझ्यौ इहि नागरि वह नागर।
'परमानंद' बीच ही बन में बात जु भई उजागर।।

---

१. *गोपालै*
२. *सुख. (ग.), ३. अंभोज (ग.)*

७६४ (सारंग)

साँची प्रीति भई एक ठौर।
मृगनयनी कमल–दल–लोचन लाल स्याम राधा तन गौर
तुम सिर सोहति पाट की डोरी हरि–सिर रुचिर चंद्रिका मोर
तुम रसिकिनी वे रसिक–सिरोमनि तुम ग्वालिनि वे माखनचोर।।
तुम करिनी वे गजबर–नाइक तुम मालती वे भोगी भौंर
'परमानंद' लाल[1] गिरिधर कें राधा–सी जोरी नहीं और।।

७६५ (कान्हरौ)

तेरौ मुख नीकौ कै मेरौ री प्यारी !
दर्पन हाथ लिएँ ब्रज–नंदन साँची कहौ वृषभानु –दुलारी।।
तुम हौ नंद के छैल छबीले हम हैं गूजरी दासी तिहारी।
'परमानंददास' कौ ठाकुर चरन–कमल की हौं बलिहारी।।

७६५ (ईमन)

आजु बने सखि ! नंदकुमार।
सँग सोभित वृषभानु–नंदिनी ललितादिक गावति गुन-सार।।
कनक–थार कर लिएँ कामिनी मुक्ता फल–फूलनि के हार
रोरी कौ सिर तिलकु बनावति करत आरती हरषि अपार
यह जोरी अविचल वृंदावन दैं असीस मिलीं वृज–नारि
कुंज–भवन में बैठे दोऊ 'परमानंददास' बलिहार।।

७६७ (सारंग)

जसुमति जीवन नंदलाल–सँग राधा सुंदरि जोरी।
अगर कपूर कुमकुमा मिलि रस कियें चंदन तन खौरी।।
कटि पर सुभ सु बसन किंकिनी खचित नगनि अति राजै
मुक्तामाल सुढार हृदै वर कौस्तुभ–मनि कल भ्राजै।।
निरखि सकल गोपी–जन हरषति सुर–बधू सुमन बधावत
अति आनंद मोर मुदित मन जन 'परमानँद' गावत।।

७६८ (सारंग)

राधा सों रस–रीति बढी।
सादर करि भेटी नँदनंदन दूने चाउ चढी।।

---

१. नंदनंदन कें (ग. ज.)

बृंदावन में क्रीडत दोऊ कुंजर–सँग करिनी।
'परमानँद' स्वामी मनमोहन ता कौ[1] इहि मन–हरिनी।।

७९९ (सारंग)

लटकि लाल रहे राधा कें भर।
सुंदर बीरी बनाइ सुंदरी हँसि–हँसि जात[2] देति मोहन कर
गोपी सनमुख चितवति ठाढी तासौं केलि करत सुंदरबर
ज्यों चकोर चंदा कौं[3] चितवत त्यों आली निरखत गिरवरधर।।
कुंज–कुटी अरु बाग बृंदावन बोलत मोर कोकिला तरु पर
'परमानँद' स्वामी मोहन की हौं बारी या लीला–छबि पर•

८०० (सारंग)

अलक लडी मोहन जू की जोरी।
वे[4] रस–पुंज नंदजू की जीवनि इहि दुलहिनि बृषभानु–किसोरी
वे कुंचित कच मधुप बिसेषित इहि सुदेस ग्रंथित सिरडोरी
वे अंबुज–मुख इहि बिधु–बदनी वे कोमल कर उरज–कठोरी
वे गजमत्त प्रबल रति–नाइक इहि सारँग–रिपु कृस–कटि थोरी
वे बृंदावन–ससि 'परमानँद' इहि निसि–नागरि नैन–चकोरी।।

८०१ (सारंग)

घन मँहि छुपि[5] रही ज्यौं[6] दामिनि।
नंदकुँवर के पाछें ठाढी कुँवरि राधिका भामिनि।।
बाल–दसा अपने[7] रँग खेलति सरद सुहाई जामिनि।
'परमानँद' स्वामी रस[8]–भीजी प्रेम–मुदित गज–गामिनि।।

८०२ (सारंग)

आजु बनी दंपतिबर–'जोरी।
साँवल[9] गौर बरन रूप[10] महा नंदकिसोर बृषभानु–किसोरी

---

१. ताहू कौ मन० (ग.) २. जाइ (घ.) ३. तन (घ.ङ. छ.)
• चतुर्भुजदास की छाप से भी–'चतुर्भुज' प्रभु मदनमोहन पिय बलिहारी या छबि पर (बं. ३७।३, ८।४)
४. तुम (सर्वत्र) (बं. १३०।२)
५. छिपि (क. घ.), ६. मानों (बं. ५७।६)
७. मोहन–सँग बिलसति (बं० ५७।६), ८. सँग क्रीडति प्रेम–पुंज (बं. ५७।६)
९. गौर–स्याम राजत दोऊ जन नंदलाल, १०. निधि (ग. ज.), अति सुंदर, तन अनुपम

एक सीस पचरँग[1] चूनरी एक सीस अद्‌भुत पट खोरी।
मृगमद–तिलक एक के माथें एक माथें सोहै मृदु रोरी।।
नख[2]–सिख उभय भाँति भूषन–छबि रितु बंसत खेलत मिलि होरी।
अतिसै रंगु बढ्यौ 'परमाननँद' प्रीति परस्पर नाँहिन थोरी

८०३ (सारंग)

गोपी प्रेम की ध्वजा।
जिनि जगदीस किए बस अपने उर धरि स्याम–भुजा।।
सिब[3] बिरंचि प्रसंसा कीनी उद्धव संत सराहीं।
धन्य[4] भाग गोकुल की बनिता[5] अति पुनीत भव माहीं।।
कहा बिप्र–घर जनमहि पायें हरि[6] सेवा–बिधि नाहीं।
तेई पुनीत 'दास परमानँद' जे हरि सनमुख जाहीं।।

८०४ (सारंग)

कवन रस गोपिनि लीनों घूँटि।
मदनगोपाल निकट करि पायो प्रेम–काम की लूटि।।
देखत[7] रूप–ठगौरी लागी सकुच[8] गई तन छूटि।
'परमानँद' बेद सागर की मरजादा गई फूटि।।

८०५ (सारंग)

अराधन राधिका कौ नीकौ।
जाकै संग मिलें हरि खेलत जो ठाकुर सब ही कौ।।
पूरब नेंमु लियौ सो साँचौ नंद–नंदन पति करिहों।
देव–लोक तजि धातृ–आज्ञा गोकुल में अवतरि हों।।
जो बृषभानु प्रबल गोपनि में चंद्र–बदनि तहाँ आई।
देखत रूप अनूप मनोहर मदनगोपालहिं भाई।।
बाल दसा मँहि प्रीति निरंतर क्रीडत गोकुल–बास।
गौर–स्याम तन इहि जोरी पर बलि 'परमानँददास'।।

---

१. पगिया रँग–बोरी
२. करत बिलास दोऊ जमुना तट बढयो रस सिंधु आनँद–झकझोरी। कहत न बनत 'दास परमानंद' (बं. ६२।२)
३. सुक मुनि व्यास, ४. भूरि (बं० १३०।१),
५. ललना (१३०।१), ६. जो हरि से यो (बं० १३०।१)
७. निरखि सरूप नंदनंदन कौ लोक–लाज गई छूटि (बं. १३०।१), ८. लाज (ड. क.)

८०६ (सारंग)

लाल ! तेरी लाडिली लडबौरी।
चाहति फिरति अकेली बन–बन लागी प्रेम–ठगौरी।।
इहि तुम करी नंद के नंदन बाँह बोलि दै हटकी।
जानै करम[1] मरम अति भोरी रूप देखि तब लटकी।।
सुनु ब्रजनाथ ! अनाथ–नाथ तुम एहि न बूझिए नागर।
'परमानँद' प्रभु अब न छाँडत हौं करी सब बात उजागर।।

८०७ (कानरौ)

गोबिंद प्रीति कै[2] बस कीनौं।
अंतरगत तें स्याम–मनोहर अनत जान नहिं दीनौं।।
नहिं सहि सकति बिछुरनौ पलु भरि भलौ नेंमु तैं लीनौ
'परमानँद' प्रभु मोहन मूरति–चरन कमल चितु दीनौ।।

८०८ (बिलावल)

इहि पट–पीत कहाँ तैं पायौ।
इतनी[3] प्रीति गुपत मोहन की तैं राधे ! त्रैलोक सुनायौ[4]।।
ना या कौ मोलु न या कौ गाहक
ना लियौ मोलु न घर उपजायौ।
एक बार खेलत बृंदावन बहुत जतन करि मोहि उढायौ
सुमिरन भजन बसत उर अंतर
इहि मिस करि लालन समुझायौ।
प्रीति की रीति चतुर सोई जानें 'परमानँद' प्रभु यौं बोहरायौ

८०९ (मलार)

बोलें माई ! गोवर्द्धन पर मुरवा।
ऐसी स्याम–धुनि–मुरली बाजै तैसें उठें घन–धुरवा।।
चलहु सखी री ! रंग–महल में पवन बहत अति झुरवा।
'परमानँद' प्रभु तुम्हारे मिलनि कौं जागत ही भयो भुरवा

८१० (मलार)

नँदलाल माई ! गुपति चलावत फीची।
कुचहि कपोल ताकि–ताकि मारत फुनि खोदत में नीची

---

१. कहा (ग. ज.), २. सों., ३. इतनिक (ग), ४. बतायौ

बालक जानि गए वृंदावन खेलनि आँखिनि मीची।
सबहिं सखिनि के ओट दै ठाढी उनि मेरी लर खीची।।
राव करो री ! जसोदा आगै लै उर अंतर–रस भीची।
'परमानंददास' कौ ठाकुर अधर–सुधा–रस सीची।।

८११ (केदारौ)

महल में बैठे[1] मदनगोपाल।
भीतर जानि सोइ जन पावै जाहि बोलत नँदलाल।।
स्याम सुभग तन चंदन–चर्चित उर सोहै बनमाल।
नंद कौ लाल संग राधा के करत परस्पर ख्याल।।
विविध विनोद करत रस-क्रीडा सज्ज्या कुसुम गुलाल।
'परमानंददास' द्वारै[2] ठाढौ चितवन नैन बिसाल।।

८१२ (सारंग)

कुंज–भवन बैठे नँद–नंद।
स्यामा–स्याम जहाँ दोऊ राजत पवन चलत गति मंद–गयंद
मदनमोहन मोहीं पठई बिरह–बिथा काटत दुख–द्वंद।
छल सब त्यागि समुझि अपने उर रति–रन–जोर सफन्द
अंग–अंग हिय–पिय नै लीनौं मानौं पियौ सरस राग–मकरंद
'परमानंद' प्रभू कौ चेरौ गुन बरनत मति–मंद।।

८१३ (सारंग)

सोभित नव कुंजनि छबि भारी।
अद्‌भुत रूप तमाल सौं लिपटी कनक–बेलि सकुँवारी।।
मदन–सरोज डहे–डहे लोचन छबि–छबि सुखकारी।
'परमानँद' प्रभु मत्त मधुप पें श्रीवृषभानु–सुता फुलवारी।।

८१४ (सारंग)

नीकी बानिक नवल कुंज की।
बरन–बरन प्रफुलित द्रुम–बेली मधुमाते अलि–गुंज की।।
करत बिहार तहाँ पिय–प्यारी संपति आनँद–पुंज की।
'परमानँद' प्रभु की छबि निरखत मनमथ-मनसा लुंज की।।

---

१. *सोए*
२. *कौ ठाकुर*

८१५ (सारंग)

आज नव कुंजनि की अति सोभा।
करत बिहार तहाँ पिय–प्यारी निरखि नैन–मन लोभा।।
रूप वारि सीचत निज तन कौं उठत प्रेम की गोभा
'परमानंद' (दास) प्रभू चितवत लागति चित कौ चोभा।।

८१६ (कल्यान)

कहै राधा देखहू गोविंद !
भलौ बनाव बन्यौ है बन कौ पूरन राका–चंद।।
मंद–सुगंध सीतल मलयानिल कालिंदी के कूल।
जाई जुही मल्लिका जूथी फूले निरमल फूल।।
सब अभिलाष होत हैं मन के[1] नहीं रहति जिय साध।
तुम्हारे समीप कवन रस[2] नाँही नाथ ! सकल सुख–लाध।।
सुनि ते[3] बचन बहुत भलौ मान्यों हँसि दीनी अँकवारि
'परमानँद' प्रभु प्रीति जु जानी नागर रसिक मुरारि।।

८१७ (सारंग)

कुंज बाहि दिखाबहुँ आजु।
माँगै जोइ देउँ नंद–दुहाई यों बोलत ब्रज–राजु।।
चितवत चित्त हर्‌यौ उहि नागरि मोहि वाहि सौं काजु।
है किसोर जोवन नहिं परसी सबै मनोहर साजु।।
फुनि[4] दूती राधा जू पें आई बचननि स्याम समाजु।
'परमानँद' प्रभु जो धन मिलऊँ तौ मेलौं मुख नाजु।।

८१८ (सारंग)

आजु तुम इहाँई रहौ कान्ह प्यारे !
निसि अँधियारी भवन दूरि है चलि न सकत पाँ हारे।।
तोरि पत्र की सेज बिछाऊँ वा तरुवर की छाँह।
नंद के लाल तुम सैन करहु देउँगी उसीसे बाँह।।
सँग के सखा सब घर को विदा करौ हम तुम रहेंगे दोऊ
'परमानँद' प्रभु–मन राधा भावै अनख करौ मति कोऊ

---

१. पूरन (ज. च.), २. गुन (ग.)
३. कै (इ. ग. से ज.), ४. फूली

८१९ (केदारौ)

कुंज महल में पौढे दोऊ।
नंद–नँदन बृषभानु–नंदिनी उपमा कौं दूजौ नहिं कोऊ।।
नाना[1] कुसुम की सेज रची है कोक–कला जानत हैं सोऊ
रसिक–मुगट–मनि रँग में भीने 'परमानँद' तहाँ द्वारें होऊ

८२० (केदारौ)

पौढे रंग महल गोबिंद।
राधिका–सँग सरद–सजनी उदित पूरन चंद।।
बिबिध चित्र अनेक चित्रित कोक कौतुक–फंद।
निरखि-निरखि बिलास बिलसत दंपती रस-कंद।।
मलय[2] चंदन अंग–लेपन परसि अति आनंद।
कुसुम–बीजन बायु ढोरै सजनी 'परमानंद'।।

८२१ (कानरौ)

पौढे हरि झीनौ पट दै ओट।
संग श्रीवृषभानु–तनया सरस रस की मोट।।
मकर–कुंडल अलक अरुझी हार गुंजा–ताटंक।
नील–पीत दोउ अदल–बदले लेत भरि–भरि अंक।।
हृदय-हृदय सौं अधर-अधर सौं नयन सौं नयन मिलाइ।
भ्रौंह-भ्रौंह सौं तिलक-तिलक सौं भुजनि-भुजा लपटाइ।।
मालती और जाई चंपौ सुभग जाति बकूल।
'दास परमानंद' सजनी देति चुनि–चुनि फूल।।

८२२ (केदारौ)

पौढे रावरी सुख–सेज।
संग श्रीवृषभानु–तनया सुरत–रस कौ हेज।।
नवल कुंजनि जाल–रंध्रनि बहत मलयज पवन।
'दास परमानंद' आली करत ब्रज–जन–गवन।।

---

१. *किसलय–दल–कुसुमनि की सज्जा (अ.)*
२. *अगर*

सुरतान्त–

८२३ (ललित)

राधे जू ! हारावलि टूटी।
उरज कमल–दल–माल मरगजी वाम कपोल अलक–लट छूटी।।
बर उर उरज करज कर अंकित बाहु जुगल बलयाबलि फूटी।
कंचुकि–चीर बिबिध रँग–रंगित गिरिधर–अधर माधुरीघूँटी
आरस–बलित नयन अनियारे अरुन उनीदें रजनी खूटी
'परमानँद' प्रभु सुरत–समै रस मदन नृपति की सेना लूटी

८२४ (बिलावल)

चली उठि कुंज–भवन तैं भोर।
डगमगात लटकत लट छूटें पहिरें पीत–पटोर।।
अरुन नयन घूमत आरस–बस मनु रस–सिंधु–हिलोर[1]।
गिरि–गिरि परत गलित कुसुमावलि सिथिल सीस–कच–डोर।।
पद–नख अंक जुगल वर राजत सुभग हियें तन गोरि।
'परमानँद' प्रभु रमी निसा अब लपटि हँसी मुख मोरि।।

८२५ (सारंग)

आवति आनँद–कंद–दुलारी।
बिधु–बदनी मृग–नैनी राधा दामोदर की प्यारी।
जा के रूप कहत नहिं आवै गुन बिचित्र सुकुमारी।
मानहुँ कहूँ पस्यौ घुन–आखर बिधिना सुहथ सँवारी।।
प्रीति परस्पर ग्रंथि न छूटै ब्रजजन इहै बिचारी।
'परमानंददास' बलिहारी मानहुँ साँचे ढारी।।

८२६ (सारंग)

बाँह डुलावति आवति राधा।
बदन-कमल झंपति न उघारति रह्यौ है तिलक मिटि आधा

---

१. *हिंडोर (क.)*

गिरिधरलाल कुँवर[1] नंदनंदन तैं जु प्रेम करि लाधा।
रहसि मिली[2] प्रान–प्सारे कौं रही न एकौ साधा।
काजर अधर मिल्यौ नैननि कौ मिटी काम की बाधा।।
'परमानँद' स्वामी रति–नागर तेरौ पुन्य अगाधा।।

८२७ (सारंग)

कहा फूली आवति है राधे !
मानहुँ मिले अंक–भरि माधौ प्रगटित प्रेम अगाधे।।
बार-बार मुसिकाति बदन–छबि बिकसित पदम[3] जु आधे
लोचन चारु बंक अवलोकनि काम नचावति ताधे।।
इहि रस–मत्त फिरत मुनि–मधुकर संभु रहत दिन साधे।
सोई रसु दियौ 'दास परमानँद' श्रीनिकेतन राधे।।

८२८ (सारंग)

छूटी री ! अलक'लट काहे न बाँधत।
मदनगोपाल रिझावे हि कारन सहजहि नैन-कुसुम-सर साधत।।
इहि चतुराई तेरी प्रगट देखियत तू नागरि नागर मन मोहति।
बसीकरण तेरी प्रीति–रीति है सखियनु माँझ सुहागिल सोहति।।
बिनु सिंगार नीकी लागति है एहि रूप गोपालहि भावत
'परमानँद' प्रभु प्रान बल्लवा करत हहा रे ! सुमुखि मनावत

८२९ (सारंग)

उपरैना स्याम–तमाल कौ।
तैं धौं कहाँ लयौ ब्रज–सुंदरि ! ललित त्रिभंगीलाल कौ।।
सुभग कलेवर प्रगट देखियत हाथनि कंकन–जाल कौ।
तू–रस मगन भई नहि समुझति बाल केलि ब्रज–ख्याल कौ
निसि–दिन रहत गोप–ग्वालनि सँग चचंल नैन बिसाल कौ
'परमानँद' प्रभु गोधन चारत मत्त गयंदबर चाल कौ।।

८३० (सारंग)

रस पायो नंदकुमार[4] कौ।
सुनि सुंदरि ! तोहि नीकौ लाग्यो या मोहन–अवतार कौ

---

१. रसिक (घ), २. मिली हैं प्रान–प्रिया सों (बं. ११६।१)
३. कमल (घ), ४. मदनगोपाल (ग.)

कंठ बाहु धरि अधर–पान दै प्रमुदित हँसत बिहार कौ
गाढे आलिंगन दै–दै मिलिबौ बीच न राखत हार कौ।।
लोकपाल पावन जसु-गावन[1] प्रगट[2] हरन भुव-भार कौ।
सेस–अंक तजि गोकुल आए देख्यो चरित उदार कौ।।
बेनु बजावत नाचत गावत इहै बिनोद सुख–सार कौ।
'परमानंददास' की जीवनि रास–परिग्रह दार कौ।।

८३१ (टोडी)

भली बनी बृषभानु–नंदिनी प्रात समै रन जीतें आवै।
नूपुर मधुप–अलक–लट छूटी मधुर चाल–मद गजहि लजावै।।
नागर छैल–रसिकिनी नागरि सुरत–हिडोरें झूलै गावै।
वे दोउ सुघर केलि–रस–मंडित नासत[3] मदन ठौर नहिं पावै
पिय की नख–मनि उरहि बिराजित बिनु सूते हि माल बनावै
'परमानंद' रूप–निधि नागरि बदन–कांति रबि[4]–जोति छुपावै।।

खंडिता–

८३२ (ललित)

कमल–नयन स्याम–सुंदर[5] निसि के जागे हौ आलस–भरे
कर–नख उर अरुन[6] रेख मानहुँ ससि[7] अर्द्धधरे।।
लटपटी सिर पाग बनी खसित बसन तिलक टरे।
मरगजी उर कुसुम–माल भूषन अंग अंक परे।।
सुरत–रँग उमगि रहे रोम–पुलक होत खरे।
'परमानँद' रसिकाइ जाहि के भाग ताही के ढरे।।

८३३ (ललित)

• साँवरे भले हौ रति–नागर !
अब कें दुराएँ क्योंऽब दुरति है प्रीति जु भई उजागर।।

---

१. गावत (ड. छ.), २ भक्तनि प्रान–अधार कौ (ग.)
३. भागत (छ.) ४. ससि कांति (बं. ११६।१)
५. घनस्याम मनोहर तुम निसि के जागे आल–रंग–भरे (बं. ३।१)
६. राजतमनों अरध ससि धरे.
७. वाल ससि धरे (बं. ११५।१)
• भले आए साँवरे रति० (बं० ११५।१) सेभी प्रारंभ है।

अधर काजर में नयन रगमगे रची कपोलनि पीक।
उर नख–रेख प्रगट देखियतु है परी मदन की लीक।।
पलटि परे पट तिलकु गयौ मिटि जहाँ–तहाँ कंकन–गाउ
'परमानँद' स्वामी मधुकर–गति भली आपुनी चाउ।।

८३४ (बिलावल)

भली करी जु आए हौ सवारे।
बहुरि भानु कौ उदय होहिगौ प्रगट देखियत अंक निन्यारे।।
पलटे पीत नील–पट ओढे ऐसी कौन चतुर धन भावत।
एते मान देह–सुधि भूली तुम हि जु आपुनपौ बिसरावत।।
पाँउ धारिये बहुत मया भई कर गहि कंत तलप बैठारे।
'परमानँद' प्रभु तुमतें और कोऊ संध्या-वचन बदे नहिं टारे।।

८३५ (सारंग)

राधे ! बात सुनहि किनि मेरी।
घर–बैठे आईं सखि मोपै सौंह करत है तेरी।।
हौं आयौ चाहत हौ तुमपै बीचि लियौ उनि घेरी।
बहुत चतुराई रहि[1] रहि देखी कैसै हू जात न फेरी।।
भवन आपने तानि लियौ सखि अरु भई रयनि अँधेरी
पर–बस परे 'दास परमानँद' काहि सुनाऊँ टेरी।।

८३६ (बिलावल)

भलै आए गिरिवरधारी नागर।
जिय की कृपा मैं तब ही जानी भोर खुलाए आगर।।
रति के समाचार लिखि पठए सुभग कलेवर कागर।
जासौं तुम अति खेलु रच्यौ है चतुर नारि के बागर।।
जाके रस तुम रहे जु बींधे सो धौं कौन अचागर।
हमारी चिंता अरुन नैन भए सकल निसा के जागर।
बलि–बलि जाऊँ मुखारविंद की सुरत–रंग–रस–सागर।
'परमानँद' प्रभु हमहिं लजावत आपुनि सदा उजागर।।

८३७ (बिलावल)

• लाल ! तुम पीत ओढिनी कहाँ बिसारी।
एतौ लाल ढिंगनि की औरै है काहू की सारी।।

---

१. कै कै (ग. च. छ.)

• पीत पिछौरी कहाँ बिसारी (बं. १२८।४) (३०।२) से भी प्रारंभ है

हौं[1] गोधन लै गयो जमुन–तट तहाँ हुती पनिहारी।
भीर भई सुरभी सब बिडरीं मुरली भलें सँबारी।।
ए[2] तौ हाथ परी काहू की सो लै गई हमारी।
'परमानँद' प्रभु[3] भली बनावत बलि जसुमति महतारी।।•

८३८ (बिलावल)

रति–रन जीते ई आवत मदन–फौज–रस लूटे।
सिथिल अंग मुख स्रवत जल मोतिनि हार–लर टूटे।।
पेच पाग के रसिक पगे सब कटि–पट–फेंट बँधे अधछूटे
लटकत केस जुल्फ घुघरारी बोलत सब्द हलाहल कूटे।।
कौन त्रिया ऐसी तुम पाई जहाँ भये कबार अधर–रस छूटे
'परमानँद' स्वामी जिय सकुचे
प्यारी फंद परी मेरे उर के भेद सब खूटे।।

८३९ (सारंग)

मैं तुम देखे स्याम–मनोहर ! गूँथत काहू की बैनी।
जद्दपि बे गुन जानति नागरि तौऽब करति कतलैनी।।
मुख औरै अंतरगति औरै ताहि बडाई दैनी।
'परमानँद' स्वामी पाँ लागूँ पर–दुख–कातर–छैनी।।

८४० (मलार)

आई जु फिरि गई बिनु आदर।
मैं वा की सँभार[4] न कीनी रबकि जु आए बादर।।
धौरी दुहत भई दुचिताई प्रथम पहर की जामिनि।
मेरे प्रेम भबन तजि आई बिमुख गई वह भामिनी।।
बा के मन में कहा बीतति है प्रान–जीवन–धन[5] राइ।
'परमानँद' प्रभु कह्यौ प्रनय करि दूती तू चलि जाइ।।

---

१. *हौं वा घाट पिबावत गैयाँ जहाँ भरति पनिहारी (बं.१२८।४)*
२. *हौं लै भजौ और काहू की बो. (बं. १२८।४)*
३. *बलि–बलि बतियनि पै तृन तोरति महतारी(बं. १२८।४)*
• *सूरसागर प० सं० १३११ तथा ३७।३ व १५ २० में भी 'पीत उढनियाँ कहाँ बिसारी' सूरदास–छाप से*
४. *सँभाषन (ख.), ५. जदुराई (ङ. छ.),*

८४१ (सारंग)

सूआ पढावति सारँग–नैनी।
बदति सँकेत लाल गिरिधर सौं गुरु–जन–निकट गुपति मति कैनी।।
अहो कीर ! नीलवरन तन नैकु सु चितै ममबुद्धि चितु–लैनी
होति अबार जात गृह दिन–मनि हम तुम भेट होइगी रैनी
तब लगि तुम[1] सिधारौ सदन निज हौं जाऊँ जमुना–जल–लैनी।
'परमानँद' प्रभु प्रीति अंतरगत मृदु मधु बचन कहति पिक–बैनी।।

21. युगल–गीत

८४२ (देवगंधार)

को बिसरै उह गाँइ'चरावनि।
बाम कपोल बाम भुज पर धरि दच्छिन भौंह उचावनि।।
कोमल कर अंगुलि गहि मुरली अधर–सुधा–बरसाबनि।
चढि बिमान जे सुनत देव त्रिय तिननि मोह–उपजावनि।।
हार–हास अरु थिर चपला उर रूप–दुखित सुख–लावनि।
दंत धरें तृन रहत चित्र ज्यौं गाँइनि–सुधि बिसरावनि।।
मोर–मुगट स्रवननि पल्लव कटि मल्ल–स्वरूप–बनावनि।
चरन–रेनु बांछत कंपित भुज सरितनि गमन थँभाबनि।।
आदि पुरुष ज्यौं अचल भूत है संग सखा गुन–गावनि।
बन–बन फिरत कबहुँ मुरली कर गिरि चढि गाँइ–बुलावनि
लता–बिटप मनु माँझ प्रनत है फल–भर भूमि नचावनि।
ततछिन हरित होइ प्रति अवयव मधु–धारा–उबटाबनि।।
सुंदर रूप देखि बनमाला मत्त मधुप–सुर–गाबनि।
आदर देत सरोवर सारस हंस–निकट–बैठावनि।।
बल–सँग स्रवन पुहुप–सोभा गिरि सिखर नाद पुरवावनि।
बिबिध भाँति बन–गमन बिचच्छन नूतन तान बनावनि
सुनत नाद ब्रह्मादिक सुर–गन अधिक चित्त–मोहावनि।
चलत ललित गति हरत ताप ब्रज–भूमि–सोक–बिनिसावनि
ब्रज–जुवती–मन मैन उदित करि हरनी–भवन–छिडावनि।
कुंद–दाम–शृंगार सकल अँग जमुना जल–उछरावनि।।

---

१. *तुमहु सिधारौ सघन बन हौंउ जाउँ.*

मुदित सकल गंधर्व–देव–गन सेवा उचित करावनि।
आरत द्रग ब्रज गाँइनि के मन अति आनंद–बढावनि।।
गो–रजरंजित नव बन–माला सुख दैवे ब्रज–आवनि।
घूमत द्रिग मदमान देत कुंडल स्रुति–जुग–झलकावनि।।
बदर–सदृस आनन सूचत सब बिधि ज्यों अंग–सिरावनि।
जुग–जुग गोपी रजनी मुख सब अति पुनीत जस–गावनि
इहि लीला चित बसौ लसौ नित गोपी–जन सुख–पावनि।
'परमानंददास' कों दीजै ब्रज–जन–पद–रज–धावनि।।

८४३ (देवगंधार)

वे हरिनी हरिनी बन जाईं।
जिनि तन कृपा–कटाच्छ चितै तुम अपने ढिंग बैठाईं।।
जे गुन–सिंधु जानि हरि–मूरति कृष्णसार तजि आईं।
जिनि नैननि मोहन कौं गोपिनि सुरति दिवाई।।
करि करुना जिनि गोपिनि की ज्यों घर की आस छिडाई।
मनि–माला कर गनतै गैयनु जे चितभीतर–लाई।।
जिनकी दृष्टि–वृष्टि अमृत की देखत रूप सिराई।
जिनु गोपाल के अंस बाहु धरि लीला गूढ दिखाई।।
प्रेम-बिबस रस-हरि-दरसन के तन-सुधि जिनि बिसराई।
'परमानँद' स्वामी करुना तैं गोपिनि की गति पाई।।

22. मथुरा पधारिवौ

८४४ (सारंग)

गोकुल बैठौ कान्ह मथुरा लैंन कहै।
सुनु रे राजा कंस ! तेरी[1] बहुत सहै।।
वासुदेव वसुदेव कौ नंदन वल्लव जाति कहावै।
मानुष–देह धारे कमलापति गोधन–वृंद चरावै।।
समाचार सब नारद भाख्यौ सावधान रिपु कीनौं।
सोवत सिंघ जगायौ पापी संतनि कौं दुख दीनौं।।
बैठि मते अक्रूर पठायौ राम–कृष्ण कौं लैन।
'परमानँद' स्वामी आवहिंगे कंसहि पूजा दैन।।

८४५ (सारंग)

माधौ सों कत तोरिये ?
कीजै प्रीति स्यामसुंदर सों बैठौ सिंघनि रोरिये।।
बहन देवकी पाँइ लागिये बसुदेव बंदि छुडाइये।
'परमानँद' गोकुल कौ ठाकुर नंद बोलि पहराइये।।

८४६ (सारंग)

केसी तृनावर्त्त जनि मार्‌यौ काली कौ विषु सोघ्यो।
एक हाथ गोवर्द्धन–गिरि धरि इहाँ आनि प्रबोध्यौ।।
सुनि हो कंस ! हमारी बातें मथुरा सचु जो चाहै।
'परमानँद' स्वामी सौं हिलिमिलि निज नातौ निरबाहै।।

८४७ (सारंग)

गरब काहू कौ सहि न सकै।
रावन हिरन्यकसिपु इनि[1] मारे काहेकौं कंस बकै।।
आँखि देखि कहा साखि बूझिये अब[2] ही लौं कहा कियौ।
जो बिष दैन गई ही गोकुल पूतना प्रान पियौ।।
सो धौं करै ताहि कौ नीकौ चरन–सरोज गहै।
'परमानँद' प्रभु सब विधि समरथ बेद–पुरान कहै।।

८४८ (सोरठ)

कहति हों बात डराँत डराँत।
जो मथुरा में सुनि आई हौं तुम्हारी कथा बल–भ्रात।।
धनुष–जाग कौ ठाटु कियौ है चोंह दिसि रोपे माँच।
रंग–भोमि नीकी कै छोली मल्ल सँकेले पाँच।।
कालि दूत आबनु चाहत है राम–कृष्ण कहँ लैन।
नंदादिक सब ग्वाल बुलाए अपनी वार्षिक दैन।।
हँसि ब्रजनाथ कह्यौ तू साँची तेरी[3] कही हौं मानौ।
'परमानँद' स्वामी मुसुकाने कालि कंस कौं भानौं।।

८४९ (सारंग)

अरी ! तू अब मथुरा तै आई।
कहै धौं समाचार उहाँ के बूझत कुँवर कन्हाई।।

---

१. इहि (क. ग. घ. ङ. छ.),
२. अबहि कहा है (ग. घ. ङ. छ.) ३. तेरौ कह्यौ (ङ. छ.)

कहा धौं बात चलति नगर में नृपति कंस के आगें।
काकौ भरमु ओइ करत भोजपति बैरु करत किहिं नातें।।
सुनहु कृष्ण ! तुम्हरी सपत करौ सब कोऊ इहि गावै।
बोल[1]–समेत नंद के नंदनु मधुपुरी देखनि आवै।।
बातें करत प्रेम–रसु बाढ्यौ नैन रहे अरुझाई।
'परमानंददास' उहि ग्वालिनि घरहि कौन बिधि जाई।।

८५० (सारंग)

गोपाल जू की सब कोउ करत दुहाई।
गोरस बेचनि गई बबा की सौं हौं मथुरा सुनि आई।।
विद्यमान नृप कंस नगर मँहि राज तेज नहिं देख्यौ।
जबतैं बैरु कियौ माधौ सौं जीवत मृतक करि लेख्यौ।।
करत अवज्ञा प्रजा–लोक सब कंस–अवज्ञा मानें।
ठकुराई हलधर के सब की जन 'परमानँद' जानें।।

८५१ (सारंग)

अपने हाथ कंस मैं मारौं।
हँसि गोपाल कहत[2] ग्वालनि सौं रंग–भोमि में डारौं।।
अहो बलराम ! सुनहु श्रीदामा ! आज रात कौ सपनौं।
हम–तुम सब मिलि गए मधुपुरी मिल्यौ जाति–कुल अपनौं।
प्रातकाल भयौ बतौआ संध्या पठयौ दूत।
'परमानँद' प्रभु भावी भाखी भयौ चलनि कौ सूत।।

८५२ (सारंग)

तैं इहि[1] बालक सुत करि पाल्यौ।
इहि हम सुनी नाम कान्हर धर्‌यौ
धाइ जसोदा उर धरि लाल्यौ।।
राजा कंस सुहथ लिखि पठई
गुपत हि नंदगोप कौं पाती।
इहि न बूझिये पै नीकी कीनी
राखी प्रगट स्वान धरि काती।।

---

१. *बल (घ.)*
२. *कह्यो (ङ. छ.)*

या कौ प्रति–उत्तर लिखि पठवौ
को इहि आहि कहाँ तै आयौ।
या कौ फल आगें पावहिगौ
मरम 'दास परमानँद' गायौ।।

८५३ (कल्यान)

ब्रज–जन देखें ही जियत।
नयन–चकोर सुधाकर हरि–मुख दृष्टि पियत।।
तुम अक्रूर चले लै मधुबन हरि मेरे प्रान–आधार।
राम–कृष्ण गोकुल के लोचन सुंदर नंदकुँवार।।
इतनी करहु पाँइ लागति हों बेगि घोष लै आवहु।
'परमानँद' स्वामी है लरिका कान लागि समुझावहु।।

८५४ (कल्यान)

सुनियत ब्रज मँहि ऐसी चालि।
माधौ–राम संग काहू कें मधुवन चलनि कहत हैं कालि।।
सब मिलि गईं जसोदा के घर कौन पाहुनौ तुम्हरे आयौ
कहा है नाम पुत्र है काकौ कौंने हित करि घोष पठायौ।।
घर–घर घोंन[२] मथान सबहिनि कें
भली बात देखति नहिं माई।
'परमानँद' प्रभु बिछुरनि लागे
बिधिना बिधि कछु और बनाई।।

८५५ (कल्यान)

गोपाल[३] हिं मधुबन जिनि लै जाहु।
मोहि प्रतीति कंस की नाहीं सोम–बंस कौ राहु।।
तुम अक्रूर बड़े के बेटा अति कुलीन मति–धीर।
बैठत सभा सकल राजनि की जानत हौ पर–पीर।।
बहिन देवकी वसुदेव सज्जन उन्हकों दीनौं त्रास।
बालक हू तैं निगड में राखे कारागृह मों बास।।

---

१. इक (ड. छ.)
२. घोर (ड. छ.), ३ गोपालै (ड. छ)

कहति जसोदा सुनु सुफलक-सुत ! हरि मेरे प्रान-अधार।
'परमानंददास' की जीवनि छाँडि जाहु इहि बार।।

८५६ (कल्यान)

कैसैं माई ! जानि गोपालहि दैहों।
कमलनयन–मानिक पर–हथ दै बहुरि कौन पै लैहों।।
कपटी कंस दूत पैं कपटी कपटी सब परिवार।
कपटी होंइ राज के मंत्री कपट–चल्यौ ब्यौहार।।
धनुष–जाग कौ काज रच्यौ है[1] मन में औरै बात।
तब तें बैरु अधिक करि मान्यौ सुनी पूतना घात।।
'परमानँद' स्वामी की लीला कहा जसोदा जानें।
ज्यों–ज्यों पुरुषारथ दिखरावै बहुरि पुत्र करि मानें।।

८५७ (सारंग)

गोविंद ! तुम जु चलत कौन राखै ?
ऐसे बचन कौन कहि जानै गिरा[2] अमी ज्यों भाखै।।
जो हौं कहों जाहु जिनि मधुबन[3] तौ तौऽब ढिठाई लागै।
जो रथ गहौं अमंगल–सूचक लोक–लाज–कुल भागै।।
बिछुरत प्रान रहै कैसें मोहन ! सोचत ही तनु छीजै।।
'परमानँद' प्रभु रसिक–सिरोमनि परै बिचार सो कीजै।।

८५८ (कल्यान)

आजु की घरी बिलँबि रहौ माधौ !
चलनि कहत हौ कत उहि गाँउ।।
कहे पराएँ कत लागत हौ इहि ब्रज अपनौ नीकौ ठाँउ।
फिरि देखौ मुख–चँद्र सबनि कौ
चित्र–लिखी सी बलि–बलि जाउँ।।
जो तुम त्याग करौ गोकुल कौ
तौ हम काकें पेट समाउँ।
'परमानँद' प्रभु प्रानं–जीवन–धन
नैननि ओट होत मरि जाउँ।।

---

१. कछु (ग. घ), २. वचन (ग. घ. ङ. छ.), ३. मथुरा (क. ङ. छ.)

८५६ (कल्यान)

वह तौ कठिन नगर की बात।
देखि अवास लोभ जिनि उपजै
तुम गोकुल तें पहिले जात।।
सब ग्वालिनि मिलि सिखवनि लागीं
सुनियत पोच कंस कौ राजु।
पठयौ दूत कपट–मनसा करि
नातर घोष कहा है काजु।।
दधि–रोचन कौ तिलकु दियौ सिर
रूपे–सहित सुपारी पाँच।
'परमानँद; स्वामी चिरजीवहु
तुमै जिनि लागहि ताती आँच।।

८६० (सारंग)

बदन[1] मुकुंद देखि–देखि जीवति।
सुन्दर रूप नैन भरि पीवति।।
रे अक्रूर ! क्रूर बटमारे।
प्रान काढि लै चले हमारे।।
बिरहाकुल फूलीं ब्रजनारी।
द्वार के चित्र मानों लिखी बिसारी।।
छाँडि लाज रथ गहौ[2] धाई।
चरन[3] गहौ सुंदर कन्हाई।।
प्रान गए तन केतिक आस।
कठिन प्रीति 'परमानँददास'।।

८६१ (कल्यान)

देखो माई ! कान्ह बटाउ से रहे जात।
तब की प्रीति अब की रुखाई फिरि पाछें बूझत नहीं बात।।
रथ–आरूढ भए बल–केसब ओइ[4] देखौ विमल ध्वजा फहराति।
दोऊ बीर चले अति आतुर कहाँ बसहिंगे आजु की राति।।

---

१. बदन कौं देखि (ग.), २. पकर्‌यौ (ग. ङ. छ.) पकरिहु (घ)
३. चरन–कमल गह्यौ सुंदर कन्हाई (ङ. छ.) चरन गहौ जैसें रहै कन्हाई
४. वे (ग. घ. ङ. छ)

मधुवन आजु महामंगल रसु सब कोऊ गावत हैं गीत।
'परमानँद' प्रभु चले हैं दिखावनि अपने चरन–सरोज पुनीत।।

८६२ (कल्यान)

सगत्य[1]ऽब लेऊँगौ राजधानी।
कंसै मारि लूटि रँग–भोमि[2] आगें चलैंगी कहानी।।
करिहौं[3] सत्य गिरा नारद की अहो ! जु अकास भई बानी।
कहत बात अक्रूर के आगें 'परमानँद' सुख[4] दानी।।

८६३ (कल्यान)

आए–आए सुनियत बाग मेला न भयो।
तब लगु मदनगोपालै देखनि कौं जासूस गयो।।
कान लागि कें कही मते की हौं वसुदेव पठायो।
नंद–गोप तुम भली न कीनी लै गोपाल हि आयो।।
काली–दमन पूतना–सोषन इहि[5] भरोसौ आवै।
मथुरा राज नंदनंदन कौ जन 'परमानँद' गावै।।

८६४ (कल्यान)

निंदक मारिए त्रासु कीजै।
नाहिन दोषु सुनहु नँदनंदन आपुनि मधुपुरि लीजै।।
इहै[6] धर्म निति–निति स्रुति गावै संतनि को सुख दीजै।
दानव–सेन–समुद्र बढ्यौ है सो अगस्त्य ज्यों पीजै।।
कहत ग्वाल सब हरि के आगें जदुकुल अपनौं छीजै।
'परमानँद' स्वामी सुख–सागर सो करि आनंद दीजै[7]।।

८६५ (कल्यान)

मथुरा देखिये नँदनंदन।
भले अवास रचे कंचन के केसी–कंस–निकंदन।।
बैठे मोर झरोखें बोलत मारग सेंच्यों[8] चंदन।
भले लोग सनमुख आवत हैं चरन–कमल –रज बंदन।।

---

१. सगति हौंऽब लेऊँगौ रजधानी (ग.) २. भूमि में (ग.)
३. करहुँ (ख.) ४. प्रभु सब सुख (ग.)
५. मोहि (ङ. छ.) ६ यह तौ धरम नित्य स्रुति गावै (क)
७. जीजै, ८. सींचत (ग.)

कहत श्रीदामा सुनहु स्यामघन ! मोरि[2] लेहु इहि पाटन।
'परमानंददास' कौ ठाकुर बहुत दैत्यनि[3] कौ डाटन।।

८६६ (बिलावल)

आए–आए होइ रहे नँद–ढोटा।
देखत लोग मधुपुरी के सब तरुन बिरध अरु छोटा।।
गौर–स्याम तन नील–पीत पट बनी दुहूँ की जोटा।
सुफलक–सुत बालक कत लायौ कंस असुर बड बोटा।
गहे केस कर धाए माइ पर सीस धरनि धर लोटा।
'परमानँद' बलि–बलिऽब भुजनि की
हत्यो भोज–कुल छोटा–मोटा।।

८६७ (सारंग)

आवै बाबा नंद कौ हाथी।
बाहु बिसाल कमलदल–लोचन बल बिचित्र[4] कौ साथी।।
अपनी इच्छा रहत बन–भीतर ग्वालिनि के सँग खेल्यौ।
केसी तृनावर्त्त जेहि मारे सकट पाँइ गहि पेल्यौ।।
वासुदेव देवकीनंदन कंस–बंस कौ कालु।
'परमानंददास' कौ ठाकुर नाइक नंद कौ लालु।।

८६८ (सारंग)

देखौ माई ! गोबिंद अपने रस कौ।
बल–विद्या कैंसे हु न पईये केवल एक भगति के बस कौ।।
ग्वालनि के सँग गाइँ चराबत अनुदिन पर्‌यौ दूध कौ चसकौ।
क्षीर–समुद्र में बसत निरंतर संत बिचार करत वा जस कौ।।
'परमानँद' प्रभु त्रिभुवन–ठाकुर कैसें होत कंस के गस कौ।
मारे मल्ल असुर सब जीते जद्यपि कान्ह बरस है दस कौ।।

८६९ (सारंग)

आवै निरंकुस मातौ हाथी।
देखि नयन–भरि कुँवर साँवरौ संकरषनु कौ साथी।।
कहति नागरी सब मथुरा की कंस पगाइ ढहायौ।
सब काहू कौ भलौ करैगौ जो गोकुल[1] तें आयौ।।

---

१. मारि (ग. घ. ङ.छ), २. दैतन (ख.)
३. संकरषन (ग. घ. ङ. छ.), ४. मथुरा में (घ)

तोर्‌यौ धनुष कुवलया मार्‌यौ चारौं मल्ल पछारे।
'परमानंददास' बलिहारी मंगल किए हमारे।।

८७० (सारंग)

आयौ मथुरा मल्ल हठीलौ।
देखहु माई ! मोहन मूरति कंस–हृदै कौ कीलौ।।
कुंजरदंत कंध धरि लीनें रुधिर–बिंदु लपटानें।
सोभा भई स्यामसुंदर तनु मोरचंद सिरबानें।।
गावहु नाचहु करहु कुलाहल घर–घर मंगलचारु।
'परमानंददास' की जीवनि नाइक नंदकुमारु।।

८७१ (सारंग)

देखि गोपाल कौ तमासौ।
अबकें तौ नीकी बिधि ऊग्यो जैसें बरजे बासौ।।
मारे दुष्ट संत सब राखे सुबसु कियो देवनिवासौ।
'परमानंददास' बलिहारी ब्यास कियो है रासौ।।

८७२ (सारंग)

काहे कों मारग में अघ छेटत।
नंदराइ कौ मातौ हाथी आवत असुर लपेटत।।
कहत ग्वाल सब सखा नंद के गल गरजत भुज ठोकत।
कंस–बंस कौं परिचित करि[1] है कौन भरोसे रोकत।।
नाहिन सुन्यौ पूतना मारी तृनावर्त्त बक केसी।
'परमानंददास' कौ ठाकुर इहि गोपाल[2] औरे सी।।

८७३ (सारंग)

सुदामा कें माधौ आए।
चरन पखारि बैठारि सिंघासन विविध भाँति माला पहिराए।।
तोर्‌यौ धनुष असुर सब मारे बालक आनँद मोद बढाए।
माँगि लियो कुबिजा कौ चंदन वा के कूबर[3] उहाँहि लगाए।।
फिरि आए देरा[4] फुनि बाबा नंद तहाँइ पाए।
पाउँ धारिकें भोजन कीनों 'परमानंददास' गुन गाए।।

---

१. हरि (घ.), २. गोकुल (घ.)
३. वाहि (ग. घ. ङ. छ), ४. डेरा (ग. छ.) जहाँ अपने डेरा (घ)

८७४ (सारंग)

लागौ प्रीति कौ मोहिला हो।
देखनि रूप नगर सब लाग्यौ मदनगोपाल उमाहौ।।
जब तैं सुने नंदनंदन कौं लै आए अक्रूर।
मथुरा ढोल दमामें बाजै कंस करैगौ चूर।।
नर–नारी सब कौतुक आए गाढैं देई असीस।
'परमानंद' प्रभु राजु तिहारौ इहाँई रहौ जगदीस।।

८७५ (सारंग)

महावत ! करिहो हाथी हाँतौ।
जम–सदन पठवोंगौ पापी दै छाती पर लातौ।।
दंत उपारि मारि या गज कों अबहिं करों भौं पातौ।
तबहिं पाँउ धारिहौं आगें इहि मारि कुवलया मातौ।।
रंगभूमि में मल्ल पछारौं ग्रीव कंस की तोरौं।
बंदि–वास बसुदेव–देवकी तिनहुके बंधन छोरौं।।
उग्रसेन के छत्र करौं सिर मथुरा जादौ–राज।
'परमानंद' प्रभु कहत सदाई मोहि भक्तनि सौं काज।।

८७६ (सारंग)

काहे तैं मदनगोपाल बिरोध्यौ।
कीनों बैर स्यामसुंदर सौं भोज–बंस सब सोध्यौ।।
तैंऽब कत मनुज करि जान्यौं परब्रह्म अवतारी।
बीरसेन महँ कहति रुदन करि कंस नृपति की नारी।।
ऐसी जानि बहुरि जिनि कोऊ नंदलाल सौं खौरौ।
'परमानंद' कंस अभिमानी कितौक भीत पर दौरौ।।

८७७ (सारंग)

मथुरानाथ सौं बिगारी।
रंग-भोमि मँह परयौ भयानक क्यों पति रहेगी तुम्हारी।।
तब काहे चेत्यौ नहिं पापी जब हि पूतना मारी।
मूरख अधम कर्म–बस[1] तेरे बालक–सृष्टि पछारी।।
विकल भई दोऊ कर मीडै कहै कंस की नारी।
'परमानंददास' कौ ठाकुर गिरि गोवर्द्धन–धारी।।

---

१. कुकर्म सब (घ. च)

८७८ (गौरी)

जीत्यौ बे[1] जीत्यौ नँदनंदन व्योम दमामे बाजै।
बरषत कुसुम देवगन गावत रितु मेघ[2] ज्यों गाजै।।
नाचत ग्वाल बजावत मुरली रंग–भोमि मँह राजै।
मल्ल पछारि कंस–सिर तोर्‌यौ नौतन भूषन साजै।।
तब हूँ हम आनँद में रहते मदनगोपाल निवाजै।
'परमानँद' प्रभु गोधन चारत डोलत कानन त्राजै।।

८७९ (लोरठी)

अपने जन कहँ राज दियौ।
उग्रसेन बैठारि सिघासन आपु जुहार कियौ।।
रंग–भूमि महँ मल्ल पछारे कंस बाहु–बल मार्‌यौ।
हत्यौ रजक लीनें नाना पट पूरब–बैरु संभार्‌यौ।।
कापै होहि कौन करै ऐसी किहि इहि मोसरु आवै।
ठाकुर करै दास की सेवा सुख दै काज करावै।।
यामें कहा घटै श्रीपति कौ जानि गरीब निवाजै।
'परमानंददास' कौ ठाकुर जसु तिहुँ लोक बिराजै।।

८८० (सारंग)

नीकौ मथुरा नगरु।
मूरतिवंत सदा संतनि हित स्याम सगरु।।
जनम मरन[3] मुंजी–ब्रत दाहक मुक्ति अगरु।
कोउ कैसें रहौ करी नाहिन कगरु।।
उत्तम मध्यम अधम भेद नहिं एक हि डगरु।
'परमानँद' स्वामी महातमु अधिक लगरु।।

26. गोपी–बिरह

८८१ (सारंग)

चलत हूँ न कान्ह कह्यौ रहनों।
लै अकूर चले गोविंद कों मधुपुरि ही कौ लहनों।।
बिनु ब्रजनाथ अनाथ भईं हम लागीं दुख सहनों।
गोकुल–ससि कान्ह बिना चाँप्यौ मनु गहनों।।

---

१. जीत्यो है (ङ. छ.) जीत्यो हो (ग.)
२. बरषा (ग. घ. ङ. छ.), ३. करम (ङ. छ.),

माई बिरहानल दुखित[1] भयौ लाग्यौ देह दहनों।
'परमानँद' संग समुझि लोचन जल बहनों।।

८८२ (सारंग)

चलत[2] हूँ न देखनि पाये लाल।
नींक करि न बिलोक्यौ हरि–मुख इतनौ रह्यौ जिय साल।।
लोचन मूँदि रहे जल–पूरति दुष्ट भये तिहिं काल।
दूरि भएँ रथ ऊपर देखे मोहन मदनगोपाल।।
मींडति हाथ बिसूरति सुंदरि आतुर बिरह–बिहाल।
'परमानँद' स्वामी फिरि चितयो अंबुज–नैन बिसाल।।

८८३ (सारंग)

जिय की साध जिय हीं रही री।
बहुरि गोपाल देखनि न पाए बिलपति कुंज अहीरी।।
इक दिन सो जु सखी इनि मारगु बेचनि जात दही री।।
प्रीति के लियें दान मिस मोहनु मेरी बाँह गही री।।
बिनु देखें घरी जात कलप भरि बिरहा–अनल दही री।
'परमानंद' स्वामी बिनु दरसन नैननि नदी बही री।।

८८४ (सारंग)

कौन बेर भई चले री गोपालहिं।
हौ मौसार[3] गई हो न्यौंते बार–बार बूझति ब्रज–बालहिं।।
तेरे तन कौ रूपु कहाँ गयौ भामिनि! अरु मुख–कमल सुकाइ[4] रह्यौ।
सब सौभाग गए हरि के सँग हृदौ सुकोमल बिरह दह्यौ।।
को बोलै को नैन उघारे को ऊतर देई बिकल मन।
जो सरबसु अक्रूर चुरायो 'परमानँद' स्वामी जीवन–धन।।

८८५ (कल्यान)

विधिना बिधि करी बिपरीत।
स्याम–मनोहर बिछुरनि लागे बालदसा के मीत।।
लै अक्रूर चले कहु मधुबन सब ब्रज भयौ भय–भीत।
विवस भए तबहि हम जाने गरग जु गाए गीत।।

---

१. प्रचुर (क.), २. चलत न देखन (क.)
३. प्यौसार (छ. ग.) ननसार (ग.), ४. सुखाइ (ङ. छ.)

चूक परी सेवन नहिं पाए चरन–सरोज पुनीत।
'परमानँद' अब कबहि मिलहिंगे सुबलु–श्रीदामा–मीत।।

८८६ (सारंग)

सरबसु लै गए ब्रज खाली।
तुम्हारे बिरह साँबरे माधौ ! काम–धेनु भई टाली।।
वृंदावन हरी[1] तृनु दै–दै काहे कों प्रतिपाली।
अब ऐसी कीनी तुम नागर ! सोक सिंधु मँह[2] घाली।।
स्याम–मनोहर बिछुरनि लागे बिरह भली करि[3] जाली।
'परमानँद' प्रभु सींचि जियावहु ज्यों ग्रीष्म–रितु माली।।

८८७ (केदारौ)

जिनि गोपालहि जानि दैहि।
अब ब्रज नंद बगदि आए हूँ इहि मन पछतावौ लेहि।।
मोहन कान्ह मोहिनी मथुरा मोहन लोगु मोहिनी नारि।
मोहन गति मोहिनी हरि–लीला मोहन गति त्रैलोक--मझारि।।
बसुदेव पिता देवकी माता इहि सब प्रगट भई नर लोक।
'परमानंद' स्वामी कत आवहिं[4] सुँदर–स्याम बिनासन–सोक।।

८८८ (सारंग)

तहाँई अटक जहाँ प्रीति नई।
वह रस गयो जु बालदसा कौ अब गोपाल–मति और भई।।
कवन दोस दीजै ब्रजनाथहि[5] परंपरा ऐसी चलि आई।
कंटक कंस हुतौ सो मार्‌यौ राजधानी मथुरा की पाई।।
अब जो कृपा करहि[6] तो आवहि[7] कृपनपालु प्रभु जदुराई।
'परमानँद' स्वामी सरबेसुर राम–कृष्ण दोउ भाई।।

८८९ (सारंग)

अहो ! तुम गोबिंद सौ कहियौ जाई।
बहुत दिवस प्यारे मनमोहन मैं नाहिन सुधि पाई।।
नंदग्राम तैं अपनि दासिका मथुरा गुपत पठाई।
सुहथ पत्रिका लिखि मृगनैनी अपनी प्रीति जनाई।।

---

१. हरिय, २ में (ग. ङ. छ.), ३. परि (ग. ङ छ.)
४. आवै (ट. छ.), ५. ब्रजनाथै (घ.), ६. करै (ङ छ.), ७. आवै (ङ. च)

चरनकमल गहि विनती कीनी बैठे जहाँ कन्हाई।
ताकौ कौन हाल नँदनंदन अपने संग खिलाई।।
ओइ तौ तनु-मनु तुमहि समर्प्यो चरनकमल लपटाई[1]।
'परमानंद' प्रान आतुर हरि ! बारक देहु दिखाई।।

८६० (सारंग)

जानी कान्ह पुरातन जोरी।
करचक[2] हुती पहले हि नाँते सोई प्रीति चटक[3] दै तोरी।।
तृन[4] तरवर सींचेई पलु है जो बरषत है मेघ बहोरी।
जोबन गयौ बहुरि नहीं आवै जो सुर द्रव तेतीस करोरी।।
तुम दिन तरुन किसोर मूरति हास–बिलास लेत चितु चोरी।
'परमानंद' मिलन कब है है करति बिषाद राधिकागोरी।।

८६१ (सारंग)

कान्ह बिनोदी रे ! मधुबनियाँ।
अब काहे कों गोकुल आवहि[5] भावति नव–जोबनियाँ।।
बाल–दसा तें मैं जु खिलाये लएँ[6] रहति ही कनियाँ।
सुनि री सखी ! कहाँ लगु बरनौं उन्हकी प्रीति अपनियाँ।।
पाँच बरष तें पहिरनि सिखये लाल पटंबर तनियाँ।
अपनें हाथ पोवति पहिरावति कंठ कनक के मनियाँ।।
तब वह चोंप स्यामसुंदर की भये गोरस के दनियाँ।
'परमानंद' सुमिरि वह बातें नयन बहत घन पनियाँ।।

८६२ (सारंग)

मेरी सुरत्यौ गई।
मथुरा बसत नँदनंदन प्रीति भई नई।।
इतनि दूरि इहै मथुरा निकट कियो विदेस।
कागद मसि खूटि गई पठयौ न संदेस।।
हरिनी ज्यों जोवति मगु ऊरध लेति उसास।
इहै दसा देखि जाहु 'परमानंददास'।।

---

१. लौ लाई (ग.), २. रंचक हुती (ग. घ. ङ. छ.), ३. तृटक (ङ. छ.),
४. तरवर तृन (क)। तरवर बिन सींचे नहीं पलु है जो बरषे रितु० (ङ. छ.)
५. आवै (ग. ङ. छ.), ६. लिये (ग. ङ. छ)

८६३ (सारंग)

सुधि करति कमलदल–नैन की।
भरि–भरि लेति नीर अति आतुर रति वृंदावन चैन की।।
गाढे आलिंगन दै–दै मिलति ही कुंजलता–द्रुम–ऐन की।
वे बतियाँ कैसैं कें बिसरति बाँह उसीसे सैन की।।
बसि निकुंज में रास खिलाये बिथा गँवाई मैन की।
'परमानँद' प्रभु सो क्यों जीवहि जो पोषी मृदु बैन की।।

८६४ (सारंग)

वे बात कमलदल–नैन की।
बार–बार सुधि आवति सजनी वह दुरि दैनी सैन की।।
वह लीला वह रास सरद कौ गोरज–रंजित आवनि[1]।
अरु वह ऊँची टेर मनोहर मिस करि मोहि सुनावनि।।
वे बातें सालति उर–अंतर को पर पीर हि पावै।
'परमानंद' कह्यौ न परै कछु हियौ सुरूँध्यो आवै।।

८६५ (सारंग)

बिधाता ! करहु हमारौ भावतौ।
नंद गोप कौ लाल मिलावहु[2] जो रस–रास खिलावतौ।
वे दिन कहाँ रसिक वृंदावन अधर पीयूष पिवावतौ।
ऐसी प्रीति परस्पर करतौ कर गहि कंठ लगावतौ।।
कमलनयन केतौ सुख देतौ जब मुरली रस गावतौ।
स्याम–कलेवर गोरज–मंडित बासरगत ब्रज आवतौ।।
तब वह कृपा स्यामसुंदर की नैननि नैन मिलावतौ।
'परमानंद स्वामी सुख–सागर बिरह–ताप बिसरावतौ।।

८६६ (सारंग)

लाल ! तुम कौन बिनोद कियौ[3]।
वृंदावन बसि कुँवर लाडिले ! सब संतोष दियौ।।
जो सरूप मन–बचन–अगोचर सो तुम प्रगट दिखायौ।
नंदकिसोर बाललीला धरि सबकौ भलौ मनायौ।।

---

१. वन तें आवनि (क. ख.), २. रसीलौ (छ.)
३. किये (ग. घ. ङ. छ.), ४. दिये (ग. घ. ङ. छ.)

गिरि-तर[1] वर-सरिता-पसु-पंछी बपु हि दिखाइ निस्तारे।
'परमानंददास' कौ ठाकुर दीनानाथ मुरारे।।

८९७ (सारंग)

हरि बिनु अब ऐसे दिनु आए।
रूप सुभाव तेज या तन कौ लै गोपाल सिधाए।।
एक दिवस[2] सूती[3] आँगन महिं[4] कंकन कान्ह चुराये।
तब[5] हँसिकें हौं माँगन लागी कुसुमलता अरुझाए।।
सुमिरत बाल–दसा की बातें नैन नीर भरि आए।।
'परमानंददास' क्यों जीजै प्रीतमु भये पराए।।

८९८ (सारंग)

जो पैं कोऊ माधौ सौं कहै।
तौ कत कमलनयन मथुरा मँहि एकौ घरी रहै।।
प्रथम हमारी दसा सुनावै गोपी बिरह दहै।
हा ! ब्रजनाथ ! रटति[6] बिरहातुर नैननि नीर बहै।।
बिनती करि बलवीर–धीर सौं चरन–सरोज गहै।
'परमानंद' प्रभु इत सिधारिबौ ग्वालिनि दरसु लहै।।

८९९ (सारंग)

मोपें हरि बिनु रह्यौ न जाइ।
कमलनयन घनस्याम मनोहर चले[7] उमाहौ लाइ।।
प्राननाथ मधुपुरी सिधारे सब गोकुल कर लाइ।
वा मूरति कौ ध्यान धरत[8] मेरौ मन राख्यौ[9] बौराइ।।
प्रगट मिलें तौ काहे न जीजै अवधि–बचन की आस।
कबहुक बिरह प्रान लै जैहै कहै[10] 'परमानँददास'।।

९०० (सारंग)

प्रीति माई ! बिनु भएँ बरु रहती।
मधुबन चलत गोपाललाल कें कत एतौ दुख सहती।।
कत इहि कामु कटकई करतौ कत बंसत–रितु दहती।
बिनु बरषा–रितु नैन जलद तैं उर–सरिता कत बहती।।

---

१. गहवर (ग. घ. ङ. छ), २. द्यौस (घ), ३. सोई (ग.), ४. में (ग. घ. ङ. छ.)
५. जब (ङ. छ.), ६. विलपति (ङ. छ.), ७. चलि लै मोहि मिलाइ (क.)
८. धरत ही (ग. ङ. छ.), ९. रह्यो भुराइ (ग. ङ. छ.), १०. सुनि (ङ. छ.)

जो जानती बहुरि नहिं आवनु चलत[1] धाइ पटु गहती।
'परमानंद स्वामी के बिछुरे अनत न सुख[2] सचु लहती।।

६०१ (सारंग)

गोबिंद बीचु दै सरमारी।
उर–तिन–कुटी बिरह–दावानल फूँकि–फूँकि सँधि जारी।।
सोच पोच तन[3] छीन भयौ अति कैसी देह बिगारी।
जो पहिलें हरि[4] हित कारन बिधिना सुहथ सँवारी।।
बरु गोपनु घर जनमु न लेती रहति गरभ में डारी।
'परमानँद' इतनी[5] कत होती नाँउ धर्‌यौ ब्रज–नारी।।

६०२ (सारंग)

मेरौ मन उहाँई[6] चाह करै।
वह मुसकानि बंक अवलोकनि हृदै तै न टरै।।
जब गोपाल गोधन–सँग आवत मुरली अधर धरै।
मुख की धूरि दूरि अंचर करि जसोमति अंक भरै।।
संध्या–समै घोष मे डोलत वह सुधि क्यों बिसरै।
'परमानंद' प्रीति अंतरगत सुमिरत नैन भरै।।

६०३ (सारंग)

जोबन काहें कोंऽब गयौ।
अब इहि देह देखि दुख लागत हरि सौं बीचु भयौ।।
सकुचत गात बात नहि आवत[7] केस पलित भई बानी।
लोचन तिमिर पंथ नंहि सूझत काम–प्यास मंदानी।।
तीन अवस्था करी बिधाता ता मँह इहि गति पोच।
'परमानंद' बिरहिनी गोपी बर–बार जिय सोच।।

६०४ (सारंग)

क्यों ब्रज देखनि हैं हरि आवत ?
नव बिनोद नई राजधानी नौतन नारि मनावत।।

---

१. तो धाइ पीतपट (क.), २. कछु सुख (ङ. छ.)
३. सूकत अंतर तन (ग. ङ. छ.),
४. विधि हरि के कारन अपने हाथ सँवारी (ग. ङ. छ.)
५. एती (ग. ङ. छ.), ६. ह्याँई (ग.), ७. आवै (ग. ङ. छ)

सुनियत कथा पुरातन इनि की बहुत लोक है गावत।
मधुकर न्याँइ सकल गुन चंचल रस लै रति बिसरावत।।
को पतिआइ स्याम तन[1] कै तब जे पर–मनहि चुरावत।
'परमानंद' प्रीति पद–अंबुज हरि–अंतरगत भावत।।

६०५ (सारंग)

ता बिनु बीतत कठिन दिना।
हमारें प्रीतम कोउ नाँहिन एक गोपाल बिना।।
माता–पिता सजन–बंधव सब करत रहे उपहास।
सब की छाती पाँउ दै गई स्यामनोहर–पास।।
इहि ब्रत नेमु निबाहें बनिहै जब लगि है उर–स्वास।
तन–मन–प्रान समर्पनु कीनौं चित चातक ज्यौं प्यास।।
बाल–बिनोद सँभारति पुनि–पुनि लोचनि मुंचति वारि।
'परमानंद' प्रभु मधुवन गवने जाम जात जुग चारि।।

६०६ (सारंग)

अब कें[2] बन–बन फिरति बही।
तब काहे न गोपाललाल–रस छिनु इक संग रही।।
पूरब-संचित सुकृत-रासि-फल श्रीपति बाँह गही।
तू ग्वालिनी जोबन की[3] माती गरब की बात कही।।
कहा पछितायें होहि अबहि कें बिरहा–अनल दही।
'परमानँद' अब का सों खेलें हरि–बिनु सोच सही।।

६०७ (सारंग)

पथिक ! इहिं पंथ न कोऊ आवै।
गोकुल देत दाहिनों–बायों हम हि देखि दुख पावै।।
का सौ कुसल संदेसौ पाऊँ का प्रीतम मन भावै।
मथुरा निकट भई[4] सत जोजन को हरि बात सुनावै।।
ब्रज–बनिता बिरहानल–जारीं[5] को तन–तपति बुझावै।
बिधि प्रतिकूल 'दास परमानँद' को हरि[6] आनि मिलावै।।

---

१. तू नेकों ते (क)स्यामघन तन कों (घ), २. क्यों (ग.)
३. मदमाती (ड. च. छ.), १. करी (ग. घ. ङ. छ.),
२. व्यापित (ग. ड. छ.), ३. तन सींचि जिवावै (ग)

६०८ (सारंग)

सखी री ! अब चित्त कौन बिचार ?
वह सुख वह रस वह मन–आनँद लै गए नंदकुमार।।
रह्यौ मैल भरि टूटि गई सरि वह मुक्ता–मनि –हार।
का कौ पहिरि ओढि दिखराऊँ नवसत साजि सिंगार।।
सब बिसर्‌यो गोपालहिं बिछुरें भोजन सयन बिहार।
'परमानँद' स्वामी के[1] बिछुरें ब्रज चाँप्यौ दुख–भार।।

६०६ (सारंग)

सखी री ! ता दिन काजर दैहों।
जा दिन नंद–नँदन के नैननि अपने नैन मिलैहों।।
करिहों न तिलक तँवोर तिरोनाँ बसन पलटि पहिरैहों।
करौं हटतार[2] सिंगार सकल कौ कंठनि पोत बँधैहों।।
अब तौ जिय ऐसी बनि भूलि न अनत चितैहों।
'परमानँद' प्रभु इहै परेखौ या[3] करिकै मरि जैहों।।

६१० (सारंग)

ब्रज में बातें पैं रही।
सुमिरत ही सालति उर–अंतर मदनगोपाल कही।।
सुनि री सखी ! बिथा या तन[4] की ज्यों बन-बेलि दही।
'परमानँद' स्वामी के बिछुरें बन[5]–बन फिरति बही।।

६११ (सारंग)

कान्ह–सँदेसे[6] तें ऊ टूटी।
आखर चारि लिखि न पठावत मसि–कागद उत खूटी।।
तब जु कह्यौ हम सौ हरि आवनि सोउ मरजादा फूटी।
का सौं करौं पुकार अकेली मदन–चोर इत लूटी।।
बाल–दसा हिलि–मिलि कें खेले सोउ प्रीति अब छूटी।
'परमानँद' एती कत होती दै चलते बिस–घूँटी।।

---

१. *बिन इहि गति (ग.)*
२. *हठतार (ङ. छ.), ३. आकरषे (ग. घ. ङ. छ.)*
४. *मन (ग. 'छ.), ५. घर–बन (क. ग. ङ छ.), ६. संदेसन (घ.)*

६१२ (सारंग)

किते दिन भए रेनि सुख सोएँ।
कछु न सुहाइ गोपालहि बिछुरें रहे पूँजी सी खोएँ।।
जब तैं गए नँदलाल मधुपुरी चीर न काहू धोए।
मुख तंबोर नयन नहिं कज्जर बिरह सरीर बिगोए।।
ढूँढत घाट बाट बन परबत जहाँ–जहाँ हरि खेल्यौ।
'परमानँद' प्रभु अपनौ पीतांबर मेरे सीस पर मेल्यौ।।

६१३ (सारंग)

दिन–दिन तोरन लागे नातौ।
मथुरा बसत गोपाल पियारे प्रेम कियौ हठि हातौ।।
इतनी दूरि जु आवत नांहिन मन औरहि ठाँ रातौ।
मदनगोपाल हमारे ब्रज की चालत नाहिंन बातौ।।
बिरह–बिथा अब जारन लागी चंद भयौ अति तातौ।
'परमानँद' स्वामी के बिछुरे भूलि गई अब सातौ।।•

६१४ (सारंग)

माधौ काहे कौं दिखाई अपनी काम की कला।
तुम सौं जोरि सबनि सौं तोरी नंद के लला !
जो गोपाल मधुबन ही बसते गोकुल–बास न करते।
जो हरि गोप–भेष नहिं धरते कत मेरौ मन हरते।।
तुम्हारौ रूप तजि और न भावै चरन–कमल मन बाँधौ।
'परमानँद' प्रभु द्रोन–बान ज्यों बहुरि न हू[1] जो साँधौ।।

६१५ (सारंग)

माई री ! अब तो डरु लागत बृंदावन जात।
गोबिंद–बिनु भीत भए तरवर के पात।।
उई निसि उई ससि उई सखी साथ।
उई गुल्म–वल्ली पै परत नहीं हाथ।।
उई समीर जमुना तीर दहत है सरीर।
'परमानँद' प्रभु सीतल निधि नांहिन बलबीर।।

• *पाठभेद और परिवर्तन से सूरसागर में प० सं० ४५५२ पर भी*

१. *दूजौ (ग. घ.)*

६१६ (सारंग)

कान्ह मनोहर मीठे बोलै।
मोहन–मूरति कब देखोंगी सरसिज चंचल डोलै।।
स्याम सुभग तन चंदन–चरचित पहिरें नील[1] निचोलै।
हीरा लाल कंठमनि माला नंद लए बहु मोलै।।
बेनु बजावत गावत आवत उर–कपाट प्रभु खोलै।
'परमानँद' स्वामी सुख–सागर बाल–दसा–गुन लोलै।।

६१७ (सारंग)

माधौ मुख देखे के मीत।
पाछें कौन[2] कौन को चलवत मँडहा–तर के गीत।।
सो प्रीतम जो और निबाहै सदा करै निहचींत।
मथुरा बसत देवकीनंदन सुनी कथा विपरीत।।
सब ही प्रान समरपनु कीनौं अधर-सुधा-रस पीत।
'परमानँद' प्रभु पाँइ लागिये कंस मारि रनु जीत।।

६१८ (सारंग)

कबहुक साँवरौ माई ! गोकुल आवै।
मदनगोपाल त्रिभंगी सुंदर कब[3] वह बदनु दिखावै।।
मोर–चंद कौ मुकटु बनायौ कटि पीतांबर सोहै।
बाल गजेन्द्र–चाल मन मोहै या उपमा कौं को है।।
जाकौ जसु त्रैलोक्य सुमंगल बेद–उपनिषद भाख्यौ।
सो प्रभु कृपावंत 'परमानँद' लीला गोकुल राख्यौ।।

६१९ (सारंग)

कब लगि मन करों हौं धीरौ।
मदन–मूरति मेरे नैननि लागी स्याम बरन पट पीरौ।।
आजु सखी सपने में भेटे मिलत भयौ तन सीरौ।
अब कहा जरनि कहौं जागे तें तपति हरन नहिं नीरौ।।
सुनि री सखी ! कहौ अब का[4] सौं सुख कौ आँकु बिधि कीरौ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर निकसि गयौ हरि हीरौ।।

---

१. पीत (ग. घ. ङ. छ.), २. को का की चलवत (ग. ङ. छ.)
३. कबहूँ (ङ. छ.), ४. को हौं (ग.)

६२० (सारंग)

इहि बिरियाँ बन तें आवते।
दूरहि तें बेनु अधर धरि बारंबार बजावते।।
कबहुक केहू भाँति चतुर चित अति ऊँचे स्वर गावते।
कबहुक लै[1] लै नामु मनमोहन[2] धौरी धेनु बुलाबते।।
इहि मिस नाँउ सुनाइ स्यामघन मूरछ–मदन जगावते।
आगम–सुख उपचार विरह–जुरि वासर–अंत नसावते।।
रुचि-रुचि प्रेम प्यासी[3] नयनन्हि दै क्रम-क्रम बलहि बढावते।
'परमानँद' प्रभु गुन–निधि दरसन पुनि पथ प्रगट करावते•

६२१ (सारंग)

सुनि सखि ! जोबन–सिंधु लटयौ।
तेज स्वभाव रूप या तन कौ बिनु ब्रज–नाथ घटयौ।।
ता दिन तैं बिधि और करी कछु उलटे हि ठाठु ठटयौ।
है उहि बात सबै इहिं गोकुल पुन्य कौ अंकु कटयौ।।
बज्रहु तें कठिन जानति हौ बिरहा हयौ न फटयौ।
'परमानँद' स्वामी के बिछुरें चात्रुक भयौ रटयो।।

६२२ (सारंग)

कमल–नयन बिनु औरु न भावै अन[4] दिनु रसना कान्ह–कान्ह रट।
रोदन कै–कै नैन गँवाए बिलखत बदन ठाढी जोवति बट।।
तुम्हारे परस–बिनु वृथा जातु है मेरे उरज धरे कंचन–घट।
ए[5] गोपाल प्रभु तबहिं मिलहुगे
जबहिं होइगी सीस सुकल लट।।
दुर्बल भई देह छाँडे सुख
और बात बिसरि मलिन भए पट।
'परमानँद' प्रभु अबहिं बिसरि गयौ
हमरौ तुम्हरौ खेलु रयनि जमुना–तट।।

---

१. धौरी धेनु मनोहर लै–लै नाउँ (ग. ङ. छ.),
२. मनोहर (घ)
३. प्रिया सैननि दै (घ. ङ. छ.)
• पाठान्तर से सूरसागर प० सं० ३८१६ पर भी
४. अहनिस (ग.), ५. नंद–गोप–सुत (घ.)

६२३ (सारंग)

हरि ! भए और के मिलनियाँ।
बाल[1]–दसा तें मैं काहे कों लै जु खिलाए कनियाँ।।
जानै को बिधाता की गति कुबिजा नव–जोबनियाँ।
'परमानँद' प्रभु प्रकट दिखाई चपल प्रीति आपनियाँ।।

६२४ (सारंग)

हरि तेरी भावती जु पहेली।
बार–बार चित चाह करत है उह[2] हि लाड़ गहेली।।
बसन कुचील चिकुर अति रूखे सजल नैन मुख–मलिनी।
या तन की गति ऐसी देखी हेम–हई जैसी नलिनी।।
बाल–दसा जासों मिलि खेले मीठे बचन दुलारी।
'परमानँद' प्रभु प्रिया राधिका बिछुरि काम–सर मारी।।

६२५ (धनाश्री)

ते दिन चलि गए मेरी माई !
इहि कानन हिलि–मिलि खेलत हे कमल–नयन लरिकाई।
उहि रस प्रीति बाल–लीला कौ तब दै सैन बुलाई।
मातु–पिता काहू नहिं जानी तैसें हरि पँहि आई।।
नव–जोबन धन नंद–सुवन पिय कर गहि कंठ लगाई।
ऐसी मिलनि स्यामसुंदर की रयनी कुंज बसाई।।
लेखे कौन हमारे लागै जो रजधानी पाई।
'परमानँद' स्वामी की बातें समुझि बधू पछिताई।।

६२६ (सारंग)

तब उहि कृपा प्रीति अधिकाई।
एकौ घरी न मो–बिनु रहते बालक–दसा कन्हाई।।
एक दिवस[3] सूती आँगन मँह डेली मेलि जगाई।
उठि राधिका कमल–मुख देखौं नैननि परै जुडाई।।
नैंकु रिसाइ रही जो पिय सौं करि मनुहारि मनाई।
उइ[4] गुन सुमिरि[5] दास 'परमानँद' हृदै न दाह बुझाई।।

---

१. *बालक (ख.), २. उहाँई (ग. घ. ङ. छ.)*
३. *द्यौस (ङ. छ.), ४. वे (क. घ.) वेइ (ङ. छ.)*
५. *समुझि (क. ग. घ. ङ. छ.)*

६२७ (सारंग)

दिन चारि आइबौ पहिले हु[1] नातैं।
स्यामसुँदर[2] गोबिंद ! खेल–बिनु
जाति है वृथा सरद की रातैं।।
बरसु दिन बीतगौ[3] अवधि ऐसी भई
बेद–बानी क्यों टरै टारी।
बहुरि परतीति को करै जादौराइ !
मरति गोपीबृंद बिरह की मारी।।
कहौ ऊधौ ! चरन–अंबुज टेकि
नंद–नंदन बहुरि वेद–रस दीजै।
मिलहु अब की बार जियत ब्रजपाल !
प्रेम 'परमानंद' प्रगट कीजै।।

६२८ (धनाश्री)

लेहु माई ! चरननि कौ चंदनु।
ब्रह्मा महादेव इन्द्रादिक इहि सबहू कौ बंदनु।।
स्याम सरीर कमल–दल–लोचन भावत है नँदनदंनु।
जो मथुरा–मानिनी–मनोहर लाला कंस–निकंदनु।।
बाल–बिनोद राधिका–बल्लभ रूपु देखि अस्पंदनु।
'परमानंददास' कौ ठाकुर जोगी जन–मन–रंजनु।।

६२९ (सारंग)

कमल–नयन कौ मथुरा राजु।
चलहु सखी ! मिलि देखनि जईये
अब धौं कहाँ कियौ है साजु।।
सुनियत हैं वे भेषु उतारे मोर मुकुट गुंजा–मनि–हार।
'परमानंद नए–नए भूषन पहिरनि लागे राजकुमार।।

---

१. पहिलेउ (क. ग. घ. ङ. छ.)
२. गोविंदचंद–संग खेले बिनु (ग. घ.)
३. गयो (ग. घ.)

६३० (सारंग)

• जदपि हौं बाबरी गँवारि।
कान्ह प्यारे कौं यौं भावति ही ज्यों प्यासे कौं वारि।।
घरी–घरी कौ रूसनौ अरु घरि[1]–घरि की मनुहारि।
घरी–घरी हँसि बोलावनौ[2] सुख पावते मुरारि।।
जब मोहि नैंक अनमनी देखत बाँधत बार सँवारि।
ओइ[3] गुन सुमिरि 'दास परमानँद' हृदौ बिरह-दौ जारि।।

६३१ (सारंग)

सँभारौ माधौ[4] पहिले बोल।
जे तब कहे सबै पलटाने सँग बन करत कलोल।।
अपनें हाथ करि मोहि पहिरावत मेरेई नील निचोल।
कसन कंचुकी बाँधते कबहूँ हस्तकमल अति लोल।।
बिसरि गये रजधानी पाई क्यों जिय कियौ निटोल।
'परमानँद' प्रभु दासि और भईं लोगु[5] लिए बहु मोल।।

६३२ (सारंग)

माधौ ! इतनी दूरि टरि गए काल।
मिलत कहा घटि जात मनोहर !
जसुमति केरे लाडिले लाल।।
जोवत पंथ मलिन[6] भए लोचन
बिनु दरसन हम भईं बिहाल।
निकट विदेस कियौ क्यों जीजै
ब्रजनाइक ! तुम्ह औरहि ख्याल।।
जब उहि सुरति संग की आवै
हृदै चटपटी परति गोपाल।
'परमानँद' प्रभु अवधि अधिक भई
को मेटै छतियाँ कौ साल।।

• *जद्यपि ० (ग. घ. ङ. छ.) से भी प्रारंभ।*
१. *घरी–घरी मनुहारि (ङ. छ.),* २. *बुलावते (ङ. छ.)*
३. *'परमानँद' प्रभु वह गुन सुमिरत (ग. घ. ङ. छ. ङ)*
• *सँभारहु० से भी प्रारंभ,*
४. *गिरिधर (क. ग. ङ. च.),* ५. *लोक (क.),* ६. *मिलत (घ)*

६३३ (सारंग)

वे दिन या देह अछित बिधनाँ जो आनै री।
स्यामसुँदर–संग रंग जुवति–वृंद ठानै री !
जद्यपि अक्रूर कूर परमगति पठावै री ।
नंदनँदन प्राननाथ बंसी न बजावै री।।
कहा करौं परम कठिन कह्यौ कोउ न मानै री !
'परमानँद' विरह–पीर बिरही पै जानै री।। •

६३४ (सारंग)

कहा बूझति तन की दुबराई।
इहि[1] थोरी जियत रहियत है बिछुरे कुँवर कन्हाई।।
जा दिन तैं मधुपुरी सिधारे राम–कृष्ण दोउ भाई।
ता दिन तैं ब्रजबासी लोकनि घर–बन कछु न सुहाई।।
जागत सपन रयनि अरु बासर हरि-बिनु कल न पराई।
'परमानंददास' की[2] जीवनि कब[3] मिलहिंगे आई।।

६३५ (सारंग)

••इह परवानों लोगनि कौ सो मैं देख्यो आँखि री।
कमल–नयन ऐसी करी[4] बचन मनोहर भाखि री।।
अपनी अरथ आदर करै न्योंति जिंवावै खीर री।
चाउ सरें दुख बिसर्‌यो ओइ छाछ न देत अहीर री।।
जब लगि जोबन–धन रह्यौ तब लगि कीनी प्रीति री।
'परमानँद' स्वामी हरि कीनी षटपद की सी रीति री।।

६३६ (सारंग)

••• माई री ! मदन–बान मारि गए मदन–मूरति कोउ।
स्यामसुँदर चपल नयन भावत मोहि सोऊ।।

• *साधारण पाठ–भेद के साथ पद सं० ४०२० पर सूरसागर में भी*
१. *इहै थोरी है जु जीवत रहियतु (ख.)*
२. *दास कौ ठाकुर (ख)*
३. *कबहि मिलेंगे (ग.)*
•• *इहै (ङ. छ) से भी प्रारंभ*
४. *है कीनी (क. ग. ङ. छ.)*
••• *मदन–बान (ग.) से भी प्रारंभ।*

सपने मँह[1] डहकि गए दै आलिंगन गाढे।
जागे[2] तें दुखित नयन जल–प्रबाह बाढे।।
मंद[3] हास गति–बिलास ताकी हौं चेरी।
सरबसु लै अनत गए ऐसी गति मेरी।।
कैसै कें[4] प्रगट मिलौं कैसें करि देखौं।
'परमानँद' भाग–दसा इतनौं करि[5] लेखौं।।

६३७ (सारंग)

परदेसी कौ नेह सखी री ! अंत नहीं ठहरात।
खायौ पियौ डगर उठि लाग्यौ ताकौ कहा पिरात।।
सुनि बाबरी ! भूलि जिनि काढै कठिन बिरह की घात।
मेरे जान[6] नंदनंदन–बिनु द्यौस कलप–सम[7] जात।।
कौन अभागी जो बिसरावै स्याम–मनोहर–गात।
'परमानँद' स्वामी के बिछुरें अब गोकुल उतपात।।

६३८ (सारंग)

स्याम ढिटोंना मोही री माई !
रंचक सकुच हुती मेरे जिय गहि अंचर मेरी लाज छुडाई।।
बाल–दसा हौं कछुवे न जानौं लै निकुंज मँह बातनि लाई।
पत्र बिछाइ तहाँ बैठारी तरु कंदंब की छाँह सुहाई।।
ऐसे चतुर नंद के ढोटा[8] बोलि न जानौं बरहि बुलाई।
अपने हरि की प्रीति निरंतर चलि री सखी ! गोपाल मनाई।।
बह रति[9] केलि–सुरति जो आवै चार्‌यौ[10] जाम समीप बसाई।
'परमानँद' स्वामी मनमोहन पहिली कथा सबै बिसराई।।

६३९ (सारंग)

बहुरि वे दिवस कहाँ मेरी माई !
मदनगोपाल मिलत जब हँसि कैं काम–केलि सुखदाई।।
एक बार बिहरत बन–अंतर मेरी लट कुसुम[11] अरुझाई।
आपुनि हँसत दूरि भए ठाढे हढि करि गारि दिवाई।।

---

१. मोहि (क. घ.) २. जागों तौ (ग.) ३. गति–बिलास मधुर हास (क. घ.)
४. करि (घ.), ५. सुख (क) फल, ६. जानें (ग. घ. ङ. छ.), ७. भरि (घ.)
८. नंदन (घ.), ९. रस (घ.), १०. चारों, ११. मुद्र.,

मानु करत मेरौ महतु राखते करि मनुहारि मनाई।
'परमानंद' सुमिरि वह[1] बातें सोचति अरु पछिताई।।

६४० (सारंग)

मोहन ! वह क्यों प्रीति बिसारी ?
कहत सुनत समुझत चित–अंतर दुख लागत है भारी।।
एक दिवस खेलत बन–भीतरु बैनी सुहथ सँवारी।
बीनत फूल गयौ चुभि कंटक ऐसी सही बिथा री।।
मो[2] पर कठिन हृदौ अब कीनौं लाल गोवर्द्धन–धारी।
'परमानंद' बलबीर बिना हौं[3] मरति बिरह की जारी।।

६४१ (सारंग)

ऐसौ मन तैं कियौ मेरे ललना !
इतनिक दूर वहे मथुरा तैं कोई[4] आंयौ चल ना।।
नयन–नीर घट्यौ नहिं कबहूँ अधर[5] सबै दिन गीले।
मुखहि[6] तंबोर नयन नहिं कज्जल चिकुर सबै दिन ढीले।।
कंकन–बलय परें खसि भूतल बहुरि उचाइ[7] न पहिरे।
सूकौ कंठ पुकारति हरि–हरि स्रवन–रंध्र भए बहिरे।।
ऐसी दसा दया तोहि नाँही बेद कहत है नागर।
परमानन्द विरहिनी कौ मुख विनु प्रीतम दिन आगर।।

६४२ (सारंग)

हम तौ माधौ ! तुमहिं लगे ।
जियकी बिथा[8] कवन सौं कहिये मातु–पिता–कुल–निकट सगे
पपीहा की प्यास मेघ ज्यों[9] बरषें आरति जानि पुकार करै।
हरि सर्वज्ञ जगत के ठाकुर कृपा करै तौ फिर ढरै।।
कीजै कृपा जानि जन[10] अपने जो ब्रजवासी गर्ब भरे।
'परमानँद' स्वामी[11] तुम्हरे भरोसे गनति न काहू तृन हू बरे।।

६४३ (सोरठ)

गोबिंद मधुपुरी कत जातौ।
उखेरी बरडै हति टैटी[12] लाई असुर–राज मदमातौ।।

---

१. इहि (ङ छ.), २. हम, ३. हम
४. कोउ न आयो चलना (ङ. छ.), ५. अंचर (छ.), ६. न (छ.)
७. वाहि नाहिं (ग. ङ. छ.), ८. बात (बात (घ.), ९. क्यों (ख.),
१०. जिय (ग. ङ. छ.), ११. प्रभु (ङ. छ.), १२. बैठी आतुर (ग.)

बरु उह कंस जीवतौ रहतौ बैरु चल्यौ बरु जातौ।
बंदि–बासु बसुदेव बरु सहतौ[1] कत टूटत इहि नातौ।।
अब काहे कों गोकुल आवै गो–सुत–वृंद चरावन
उहि गुन सुमिरि कियौ नहिं फेरौ दाम उलूखल[2] बँधावन।।
बिरह–बिथा तन बाढनि लागी प्रेम न हृदै समाई।
'परमानंद' नदी अंतरगत उमडि ऊपरें[3] आई।।

६४४ (सारंग)

या मन कौ कहा करौ जो न रहै।
उहि मूरति नैननि बिनु देखें जीउ बिरह–दुख सहै।।
बार-बार समुझावति सखी री ! धीरजु करि दिन च्यारि।
स्याम–मनोहर या गोकुल की नाहिन सुरति बिसारि।।
बदी जु अवधि टरैं सो कैसें सत्य बचन प्रभु भाख्यौ।
'परमानँद' स्वामी के निज गन[4] में अंतर तें राख्यौ।।

६४५ (सारंग)

इह ठौर जहाँ हरि खेलते।
सुनि री सखी ! कहाँ लौं बरनौं तब ग्रीवाँ[5] भुज मेलते।।
एक दिवस नँदलाल लकुटिया तेरें[6] करिया बेलते।
इहीं[7] निकुंज जहाँ मन–मोहन मिलि मनमथ–दल पेलते।।
तब कत इहै[8] जात ब्रज राख्यौ इन्द्र–कोप की रेल तें।
'परमानंद' कहहु[9] हरि सों[10] जैसें दिया बिनु तेल तें।।

६४६ (सोरठ)

माई ! दोइ कैसें बनि आवति।
विमुख जु रहति कमल–लोचन सौं ताही तें दुख पावति।।
कै तू होइ स्यामसुंदर की कै तू[11] अपनें घरहि रहै।
कै गहु चरनकमल गाढे[12] करि कै अब जाइ भव-जलधि बहै।
इहि जु एक मन बहुत ठौर धरि कहै कौनें सुख पायौ।
'परमानंद' वाद है एतौ निगम–भागवत गायौ।

---

१. रहतौ (ग. घ. ङ. छ.), २. ऊखल (ग. ङ), ३. ऊफरें (छ.)
४. गुन (ग.) गन में दुख अन्तर (छ.), ५. भुज पर (ग.), ६. तिरछी करि (ग. घ.) तीरी
७. इहै (ग. घ. ङ. छ.), ८. वह (ख.), ९. कहौ (ङ छ.), १०. ऐसें (छ.)
११. कै अपने घर बैठि० (ङ. छ.), १२. गाढौ (ग. ङ. छ.)

६४७ (सारंग)

किते दिन हरि–देखे[1]–बिनु बीते।
एकौ न स्फुरै[2] स्यामसुंदर–बिनु बिरह सबै सुख जीते।।
मदनगोपाल बैठि कंचन–रथ चितै किए तनु रीते।
सुफलक–सुत लै गए दगा दै प्राननि ही तें प्रीते।।
सो दिन कबहि घोष आवहिंगे मोहन–बलभद्र–समीते।
'परमानंद' प्रभु देह अछत अब मिलहु श्रीदामा–मीते।।•

६४८ (मलार)

••उय मनहु बुलावत है गोपालहि[3]।
बहुरि नयन भरि देख्यौ चाहें मोहन गिरिधरलालहि[4]।।
गोवरधन परबत के ऊपर बैठि सिला पर बोलत मोर।
झेंव[5] उचाइ–उचाइ पुकारै नाम लेत है नंदकिसोर।।
पंख[6] पसारि–पसारि दिखावहिं इहि गति भई आएँ[7] ब्रज–नाइकु।
'परमानँद' प्रभु या बिनोद–बिनु कानन–भवन भए दुख–दाइकु।।

६४९ (मलार)

प्रथम कृपा करि सोखी आँखिनि।
अब उहै ठौर रमि जु रहे मरियत हैं झाँखिनि[8]।।
सो बिरहिनि कैसें जीवै दरसन–अभिलाखिनि।
ताके मन कैसे मानत अधरामृत–चाखिनि।।
उह चित हम ते दूरि गयौ सनमुख मधु भाखिनि।
'परमानंद' प्रभु हस्त–कमल गोवरधन राखिनि।।

६५० (सारंग)

लाल बुलावत हे उहि बरियाँ।
मदनगोपाल मनोहर मुख तें मुरली बिसद उच्चरियाँ।।

---

१. दरसन (ग. ङ. छ.), २ फुरै (ग. ङ. छ.)
• साधारण पाठभेद से पद सं० ४००६ पर सूरसागर में भी
•• ओइ मन० (ङ. छ.) से भी प्रारंभ
३. गोपालै (ङ. छ.), ४. लालै (ङ. छ.)
५. ग्रीव (ङ छ.) जेवउ
६. अरी ! ओइ पंख (ख), ७. न आए (ग.)
८. झाँखिन–इसी प्रकार सर्वत्र तुकान्त (ख.)

जब घनस्याम सिधारत बन कों तबहूँ हम न बिसरियाँ।
'परमानँद' दरसन भयौ दुर्लभ बिछुरे कौन कुघरियाँ।।

६५१ (सारंग)

नहिं बिसरति वह रति ब्रजनाथ !
हौं रिसाइ रिस रही मौन धरि रस ही में खेलत इक साथ।।
पचिहारे जु मनावौ[1] न मान्यौ आपुन चरन छुहे हरि[2] हाथ।
तब रिसाइ सोए[3] उत मुख होइ झुकि कें झाँपि उपरेंना माथ।।
रहि न सके जु प्रेम आतुर अति जानी रजनी जात अकाथ।
'परमानँद' प्रभु ठगी[4] जु महा निसि पढि जु सुनाई प्रात[5] की गाथ।।

६५२ (सारंग)

कमलचंद की सोभा मेटत कब देखोंगी उय[6] सुंदर मुख।
संमिलित बेनु पीत रज–मंडित अलि–लोचन पीवत सुख।।
ऐसौ भाग्य बहुरि कब करिहै कब करिहै या ब्रज के ऊपरि रुख।
सुंदर–स्याम मनोहर मूरति नंद–सुवन मोचन–गोकुल–दुख।।
उपमा कौं दूसरौ नहिं कोऊ कमल–नयन सब संतनि कौ पख।
'परमानँद' प्रभु रसिक–सिरोमनि पांडव–कुल–पालक पारथ–सख।।

६५३ (सारंग)

कब री ! मिलैगो मेरौ मदनगोपाल मनोहर।
जा दरसन–बिनु बन री[7] ! भयौ घर।।
कालिंदी बृंदावन इहि ब्रज देखि–देखि लागनि लागौ डर।
सोरदूल उठि चले री ! मधुपुरी अब री सखी ! कीजतु काके बर।।
चलियतु काहे न जहाँ री ! स्यामघन मेरौ कह्यौ तुम सब सखि परिहरु।
'परमानँद' प्रभु रसिक–सिरोमनि नंदकिसोर सुभाय–कलपतरु।।

६५४ (सारंग)

मारग माधव कौ जोवै।
वहै अनुहारि न देख्यौ कोउ जोऽब नयन–दुख खोवै।।

---

१. *मनायौ (ग. घ. ङ. छ.)* २. *हँसि (ग. घ. ङ. छ.)*
३. *फिरि सोइ रहे उत (क. ग. घ. ङ. छ.)*
४. *छली महा (क. ग. घ. ङ. छ.)* ५. *प्रीति*
• *पर पाठ–भेद से पद सं० ३८२१ सूरसागर में भी*
६. *वह (ग. घ. ङ. छ.),* ७. *ही (ग. घ.)*

बाल–बिनोद किए नँदनंदन सुमिरि–सुमिरि गुनि रोवै।
बासर-प्रति गृह-काज न भावै निसि भरि नींद न सौवै।।
अंतरगत की ब्यथा[1] मानसी सो तन अधिक बिगोवै।
'परमानँद' गोबिंदचंद–बिनु अँसुअनि–जल उर धोवै।।

६५५ (सारंग)

• बहुरौं ब्रज कौ नामु न लीनौ।
जानौं नहीं कहा जिय उपजी[2] कान्ह निठुर चित कीनौं।।
जननी–पिता–बंधु–गोपीजन सबै घोष बिसरायौ।
केते दिन पाछें री माई ! मैं हुँ सँदेस न पायौ।।
अब ऐसी आवत हे मन मँह[3] नंदनंदन पँह जईये।
कै बिनु मिले 'दास परमानँद' कठिन बिरह–बिष खईये।।

६५६ (सारंग)

माई ! को इहि गाँइ चरावै ?
दामोदर–बिनु अपनौ संघातीनु कौन सिंगार करावै[4]।।
सब कोउ पूजै दीपमालिका हौं कहा पूजौं माई !
राम–गोपाल मधुपुरी गमनें धाइ–धाइ ब्रज खाई।।
दाम दोहनी माट मथानी जाइ पासि को पूजै।।
का कौं मिलें चलै इह गोकुल कौन बेनु–कल कूजै।।
करत प्रलाप सकल गोपीजन मन मुकुंद हरि लीनों।
'परमानंद प्रभु इतनी दूरि बसि मिलन दोहिलौ कीनौं।।

६५७ (सारंग)

गोपाल–बिनु कैसें कें ब्रज रहिबौ।
धूसर–धूरि उठाइ गोद लै लाल कवन सौं[5] कहिबौ।।
जो मधुपुरी दिवस लागत[6] तुम्हें सोच सूल तनु दहिबौ[7]।
'परमानंद' स्वामी रिपु काजै[8] सरन कौन कौ गहिबौ।।

---

१. *विथा (ग. छ.)*
• *बहुरयौ० (ग. ङ. छ.) से भी प्रारंभ,*
२. *आई (ग. घ. ङ. छ.)*
३. *में (ग. घ. ङ. छ.),* ४. *बनावै (क. ग.)*
५. *कौन (छ.),* ६. *लागिहें (ख.) लागहिगे (क.)*
७. *सहिबौ (घ.),* ८. *कोजें (क. ख.)*

६५८ (सारंग)

• मानु इहाँई लौं प्रीति।
मदनगोपाल भली है कीनी मधुकर की सी रीति।।
सुनियत है गुरुकुल पढि आए भली राज की नीति।
सेवकई[1] नीकें करि जानत कंस मारि रिपु जीति।।
कहाँ उह[2] प्रीति जु बाल–दसा की मिलि खेलते समीति[3]।
'परमानँद' प्रभु उदर तें राखी अपने कुल की भीति।।

६५९ (सारंग)

वह मुख कबहुँ[4] दिखावहुगे हरि !
जिहि मुख बस कियौ सब गोकुल
चारु बिलोकनि मुरली अधर धरि।।
जिहि मुख अमृत स्रवत मधु–धारा
पिबत स्रवन–पुट मन अति गहवरि।
नेकु न मलिन सदा आनँदमय
कोटि चंद डारौं[5] बारि उपरि करि।।
जिहि मुख धौरी धेनु बुलावत
गावत गीत मधुर नाना परि।
'परमानंददास' वा मुख–बिनु
अंध भयौ ब्रज रह्यो बिरह मरि[6]।।

६६० (सारंग)

सुरति आवै कल बेनु की।
मदनगोपाल त्रिभंगी सुंदर मुख–मंडित कच रेनु की।।
अब उह समै बहुरि बिधि करिहै कुंज चरावन धेनु की।।
सात दिवस झर इंद्र–कोप तें गोवरधन कर लेनु की।।
नहिं बिसरति उह केलि कान्ह की घर के दधि पय–फेनु की।
'परमानंद' स्वामी हरि प्रहसित और लरिकवन देन की।।

(६६१) सारंग

हरि की[7] मधुकर की सी न्याँई।
एक बार रस चाखि फूल कौ बहुरि न दई दिखाई।।

• *मानों० (ग. घ. ङ. छ.) से भी प्रारम्भ*
१. सेवक ही (ग. छ.), २. वह (ग. घ. ङ. छ.), ३. समीप (ख.)
४. कब दिखरावहुगे (ङ. छ.), ५. वारों ऊपरि (ग.), ६. भरि (ग. ङ. छ.)
७. कीनी (ग. ङ. छ.)

स्याम–बरन तन बाहिर–भीतर ताकौं को पतियाई।
काहे कौं एतौ कीजतु है झूठी असत सगाई।।
लेति उसास नयन जल भरि–भरि प्रेम न हृदै समाई।
'परमानँद' गोपिका विरहिनी प्रान–जीवन जदुराई।।

६६२ सारंग

इतनि दूरि मनमोहन की कछु आवत नाहिन पाती।
ज्यो–ज्यों गहरु करत है मधुबन त्यों–त्यों धरकति छाती।।
गत बंसत ग्रीष्म रितु प्रगटी बनसपती सब पाती।
चातक मोर कोकिला कलरव ए बिरहिनि के घाती।।
कहाँ लगु जाँहि कवन[1] सौं कहिये बोलि जगाबहि राती।
'परमानंद' प्रभु चलत न जाने तौ संग़हि उठि जाती।।

६६३ (मलार)

चातक पीउ–पीउ बोलत।
पिय गोपाल की सुरति आवति तातें[2] मेरौ मन डोलत।।
अंबर मेघ–घटा घन गरजत चौहौं दिसि कौंधति दामिनि।
माधौ–राम बिदेस सिधारे नींद न आवें जामिनि।।
नैननि नीर सरीर न सूझत अंधकार उठि भेटति।
'परमानंद' प्रभु तुम कब आए लज्जित चीर समेटति।।

६६४ (सारंग)

ता दिन सरबसु देउँ बधाई।
जा दिन दौरि कहै सुनि सजनी ! आए हैं कुँवर कन्हाई।।
मैं[3] अपनौ सौ बहुत करि लीनौ लाल न देत दिखाई।
सोचत जात दिन अवलोकत उह न कबहु न जाई।।
मेरी उनकी प्रीति निरंतर बिछुरत पल न घटाई।
'परमानंद' बिरहिनी हरि की सोचति अरु पछिताई।।

६६५ (सारंग)

प्रान–जीवन जदुराई ! मिलिहौ कब माधौ !
सोचत सोच भयौ तन पियरौ घटि गयौ जोबन आधौ।।

---

१. कौन (ग. घ.),
२. तामें (ङ. छ.)
३. हौं (ग. ङ. छ.)

चंदन–चीर मंद मलयानिल सकल भए दुखदाई।
बैरिनि कुहुकि कुहुकि कत बोलति कोकिल देहु उडाई।।
क्यों दुख जाइ कवन सौं कहिये रहिये कहाँ सयानी।
'परमानँद' प्रभु अवधि बितीती हरि मधुवन–रति मानी।।

६६६ (मलार)

माधौ माई ! मधुबन छाए।
कैसें[1] रहै प्रान गोविंद–बिनु पावस के दिन आए।।
हरित बरन बन सकल द्रुम पातें मारग बाढी कीच।
जल पूरति रथ कौ गमन[2] नहीं बैरिनि जमुना बीच।।
का के हाथ सँदेसौ पठऊँ कमलनयन के पास।
आवत जात इहाँ कोऊ नाँही सुनि 'परमानँददास'।।

६६७ (सारंग)

नयनाँ रहट की घरी रहाइँ।
करि–करि सुरति मदनमोहन की भरि आवै ढरि जाइँ।।
बिनु ब्रजनाथ सखी ! क्यों जीजै घर–कानन न सुहाइँ।
वेई बसन वेई पट–भूषन भए भुअंगम खाँइ।।
या मथुरा तन तेज[3] सखी री ! बायो पै न बहाइ।
'परमानंद' स्वामी के बिछुरे हियरा[4] क्यों न सिराइ।।

६६८ (सारंग)

रहि सखि बावरी ! तन छीजै।
बिछुरन–मिलन रच्यौ बिधि ऐसौ सोचु कहाँ लौं कीजै।।
अंबुज–नयन नीर कत ढारति उर–अंचर तेरौ भीजै।
'परमानंद' धीरजु धरि भामिनि ! हरि के चरन चित दीजै।।

६६९ (सोरठ)

बाबा की सौं कै उनकी सौं आजु राति नहिं नीद परी।
जागत गनत गगन के तारे रसना रटति गोबिंद हरी।।
उह चितवनि उह रथ की बैठनि जब अक्रूर की बाँह धरी
देखति रही ठगी–सी ठाढी बचन न आवै बिरह–भरी।।

---

१. मेरे सो नहिं प्रान (ङ. छ.), २. गम नाहीं (घ)
३. तेजु, तन तें सखी (घ. ङ. छ.), ४. हियरौ (ग. घ. ङ. छ.)

उहहि[1] ध्यान अंतरगत मेरे बिसरत नाहिन एक घरी।
'परमानंद' प्रभु मोहन मूरति मुरली-मनोहर स्याम-हरी।।

६७०

(सोरठ)

अब हौं गहरें पैठि डरानी।
कमलनयन तब कर गहि काढी प्रीति निरंतर जानी।।
उइ दिन सुरति करति ब्रज–ललना जमुना निरमल पानी।
अपनि अंक[2] धरि स्याम–मनोहर काढि कें बाहिर आनी।।
उह खेलिबौऽरु हँसि–हँसि मिलिबौ बचन कहत मधुबानी।
'परमानंद' करी अब ऐसी निपट बटावनि जानी।।

६७१

(गौरी)

माई ! हरि प्रीतम पस्देस।
का कें हाथ देउँ लिखि पाती को लै जाइ सँदेस।।
नींद न परै भूख न लागै अनुदिन सोच अपार।
कहा करौं कैसै मन राखौं बिछुरे नंदकुमार।।
लै–लै स्वास नयन जल भरि–भरि जीवति मिलन की आस।
कैसै कहों 'दास परमानँद' बिरह मनोभव–त्रास।।

६७२

(गौरी)

बेधी हौं पद–अंबुज–मूल।
रह्यौ न परै स्यामसुंदर–बिनु नयना मुख देखि न भूल।।
लरिका–वृंद संग करि लीनें खेलत हैं जमुना[3] के कूल।
बलिहारी मनमोहन मूरति नाहिन जाहि कोउ समतूल।।
मारग चलत अचानक सखि री ! लागी कुसुम बान की झूल
तनमय भई ठगौरी लागी उपजी उर मदन की सूल।।
बिसर्‌यौ गृह-व्यौहार प्रेम–रस निमिष नहि भयौ चित लूल[4]
'परमानंद' हर्‌यो मन केसौ लोचन चारु कमल के फूल।।

६७३

(गौरी)

जसोदा ! मधुबन तें आजु–कालि तेरे हु कोउ आयौ ?
बहुत द्यौस बितित[5] गए संदेसौ[6] न पायौ।।

---

१. बेई (घ), २. कंध(घ), ३. कालिंदी कूल (क)
४. चूल (ङ छ.), ५. बीति (ग. घ. ङ छ), ६. सँदेस हू (घ. ङ छ.)

कैसै ताहि नींद परै कैसै गृह[४] भावै।
जाकी निधि छूटि जाइ धीरज कैसै आवै।।
गोपिनि के बचन सुनत बिलखति नँदरानी।
'परमानँद' प्रीति जानि[५] नयन स्रवै पानी।।

६७४ **(सारंग)**

हमकौं बिषम भई निसि सेजौ।
ऊधौ ! कमलनयन की बातें छुटि-छुटि जरत[६] करेजौ।।
गोवर्द्धन वृंदावन इहि व्रज फुनि–फुनि सुरति करावै।
इहि[७] निबास कान्ह जहाँ खेलत बल–सह गाँइ चरावै।।
एई बेनु बिषान बेत दल मोर–पिच्छ मनि–गुंजा।
'परमानँद' स्वामी के खिलौना सकल प्रेम के पुंजा।।

६७५ **(सोरठ)**

कवन सच टरि ब्रज केरौ।
सुनि जसोमति ! गोकुल के लोचन लै गयो मोहन तेरौ।।
कों जानै कहा जिय उपजी बहुरि न कीनौं फेरौ।
स्यामसुंदर के हित की बाँधी[१] बाढ्यौ विरह घनेरौ।।
जा के चरनकमल मुनि–बंदित[२] भवसागर कौ बेरौ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर ता कौ[३] सब जगु चेरौ।।

६७६ **(केदारौ)**

एते दिन अवधि के टारे।
मदनगोपाल हमारे उनके किहिं लेखे मँह पारे।।
तब वह प्रीति मिलनि बन मँह की प्राननि किये निनारे[४]।
स्याम–मनोहर आइ बैठते रुचिर तलप पर वारे।।
वत्स उबेरि खेलिबे के मिस चलते बनहिं सवारे।
तब ऐसी करि[५] हमारे हित कौं संखचूड़ से मारे।।
तुम ठाकुर बनिता तहाँ केती हम गुन–ग्राम बिचारे।
'परमानँद' प्रभु तिनकी कहावति जनम नाथ–हित हारे।।

---

१. इह (घ. ङ छ) २. ह्वदै (क. घ. ङ. छ.)
३. जाति इहाँ निसि वासर गिरिधर खेलत (क. ग. घ. ङ. छ)
• कौन० से भी प्रारंभ (छ)
४. बीधी (ग.), ५. बंदत (क), ६. जाकौ (ग.), ७. जु न्यारे (ग.), ८. करत (ग.)

६७७ (सोरठ)

तब हरि बतियनि ही सुख देते।
छिन[1] एक भवन विलंब करति तब लोचन भरि–भरि लेते।।
को जानै इहि प्रीति कपट की मुख औरहि जिय और।
पाछैं कैं[2] पहिचानि तजहिंगे स्वारथ–साधक भौंर।।
तद्दपि इहि मन खरौ लालची करत मिलन की आस।
नहिं[3] जात बदन बिनु देखें सुनि 'परमानंददास'।।

६७८ (सोरठ)

अब दरसन की साधनि मरियतु।
मदनगोपाल मनोहर मूरति
देखिबे कौं केतौ लालच करियतु।।
जब तें कमलनयन ब्रज छाँड्यौ
सुनि री सखी ! बिरह दौ जरियतु।
अवधि–आधार आस मिलिवे की
चलत प्रान जतननि छिनु धरियतु।।
सुमिरत रास सरद[4] रातनि के
मनसिज–बान छिनु ही छिनु भरियतु।
'परमानँद' स्वामी बिनु देखें
सोक–समुद्र[5] दिवा–निसि तरियतु।।

६७९ (सोरठ)

बरजौ या चंद मंद किरन–पुंज जारै।
स्यामसुँदर गोविंद–बिनु कौन इहि निवारै।।
ससि हर गुन कहियत है सीतल सुखदाई।
ग्रीष्म काल रबि की गति हम तन दौ लाई।।
इक कलंकु लागि रह्यौ दूसरौ क्यों मिटिहै।
अवला बल मास मंद जुग न पाप घटिहै।।
जा परि[6] तू एतौ करत माँझ बिमल सोऊ।
'परमानंद' संतनि में भलौ न कहै कोऊ।।

---

१. जब छिनु एक भवननि बिलंबति (क.)
२. को (क. ङ. छ.) तें (घ.), ३. कछु न सुहाइ दरस देखे बिनु (क.)
४ सरद जामिनी के (छ.), ५. सिंधु (ङ. छ.), ६. जा परि तुम (घ) जा बरि (क. ख)

६८० (सोरठ)

माई ! अब इहि[1] सरद–निसा लागति है फीकी।
स्यामसुँदर–संग होइ तब ही पै नीकी।।
ससि हर संतापकारी बरषत विष–बूँदें।
मारुत–सुत सुभाव तज्यौ दसौं दिसा[2] मूंदै।।
'परमानँद' स्वामी गोपाल परिहरि हम सिखई।
प्रान पयान करन चाहत मिलहु कपट बिखई।।

६८१ (सोरठ)

माई री ! मधुबन केतिक दूरि ?
चढि गिरि–सिला बिरहिनि गोपी नैन रहे जल पूरि।।
जो बिधि बीच कियौ हरि हम सौं निसि–दिनु जोवति बाट।
रह्यौ न परै नंद–नंदन–बिनु मूँड जु पर्‌यौ उचाट।।
कहा[4] री ! करौं कैसै लै आऊँ जाउँ स्याम के पास।
कछु न सुहाइ भवन अब[5] देखौ सुनि 'परमानँददास'।।

६८२ (गौरी)

कब[6] देखिबै खरिक में ठाढे ?
मिलिहैं मदनगोपाल मनोहर दै[7] आलिंगन गाढे।।
कटि पट–पीत धूरि–धूसर बपु[8]दर बिचित्र बनमाला।
कुंचित अलक तिलक अति[10] सुंदर लोचन चारु बिसाला।।
एक हाथ दोहनी कनक[11] की एक पाट की नोई।
बछरा मिलवत[12] धेनु दुहावत साँझ समै सचु सोई।।
कठिन बिरह उपज्यौ उर–अंतर हरि–बिनु कौन निबारै।
'परमानंद' मधुपुरी प्रीतम गोपी अवधि बिचारैं।।

---

१. तौ (ङ छ.) तौ इहि (ग. घ.)
२. रहै (क. ग. घ. ङ. छ.)
३. दसा (ख)
४. कहा करों (ग. घ. ङ छ.), ५. अपने में (ग. घ. ङ छ)
६. कबहुँक (ग. ङ छ.), ७. दैऽब (ग. घ. ङ) दै अब (छ.)
८. तनु (क. ग. घ. ङ. छ.), ९. राजित (ग. घ. ङ छ.)
१०. की सोभा लोचन–कमल (क.) मृग–मद रुचि अंबुज–नैन (ग. घ. ङ छ.)
११. बिराजित (क. ग. घ. ङ. छ.), १२. छोरत (ग. घ. ङ. छ.)

६८३ (मलार)

बहुरि हरि आवहुगे किहिं काम ?
रितु बसंत अरु मकर–बितीते अरु बादरु गए[1] स्याम।।
तारे गगन गनत री माई ! बीते चार्‌यौं जाम।
और[2] काज सब बिसरि गए हरि ! लेत ! तुम्हारौ नाम।।
छिनु आँगन छिनु द्वारै ठाढी हम सूकत ए[3] घाम।
'परमानंद' प्रभु रूप बिचारत रहे अस्थि अरु चाम।।•

६८४ (मलार)

काहे कों बिलँबु कियौ बेगि न आए
कमल–नयन ! मेरे प्रान–जुडावन।
दादुर मोर पपीहा बोलै
मदन जगावनु आयौ[4] सावन।।
बिरह–बिथित तनु धीर न धरै मनु
दिन–दिन लागे अवधि बढावन।
गनत दिना अब पावसु आयौ
बूँद परत लागी दुख पावन।।
तब जु बचन बदि गमन कियौ हरि
सुनहु[5] न सखियनु मन बहरावन।
'परमानँद' प्रभु रसिक–सिरोमनि
मिलोंगी आँकौं भरि मधुबन–भावन।।

६८५ (केदारौ)

रयनि पपीहा बोल्यौ[6] माई।
नींद गई चिंता चित्त बाढी[7] सुरति स्याम की आई।।
सावन मास देखि[8] बरषा–रितु हौं उठि आँगन आई[9]।
गरजत गगन दामिनी दमकति[10] वा में जीउ डराई।।

---

१. भए (क. ग. घ. ङ. छ.)
२. (घर कौ काज (ङ) गृह काज (छ), ३. हैं (ग.व ङ छ)
• प० सं० ३६२७ पर सूरसागर में भी परिवर्तन से।
४. आयो है (ग. घ. ङ छ), ५. सुनि उनि सखि
६. वोल्योरी (ग. ङ. छ.), ७. उपजो (क.)
८. मेघ की बरसनि, ९. धाई, १०. चमकति तातें खरी (क)

रागु मलार कियौ[1] जब काहू मुरली मधुर बजाई।
बिरहिनि बिकल 'दास परमानंद' धरनि परी मुरझाई।।

६८६ (केदारौ)

हमारे हितकारी गोपालु।
सुंदर–स्याम जसोदा–नंदन गोकुल कौ प्रतिपालु।।
जब तें जनमु नंद–गृह लीनौ बकी–पूतना–कालु।
गोबरधन–उद्धरन एक कर कंस–हृदै कौ सालु।।
समुझि न परै सकल अदभुत गति लीला–बिग्रह लालु।
'परमानंददास' कौ ठाकुर गोधन–चारन ख्यालु।।

६८७ (गौरी)

सुरति करि डहकिऽब रोइ दियौ।
पथिक एक जात हौ मारगु राधा बोलि लियौ।।
कहि धौ बीरु ! कहाँ तें आयौ उहु[2] मिलि प्रनामु कियौ।
वह[3] पाइ लागि सिधाई मंदिर बहु[4] दुख जानि गयौ।।
गदगद कंठ हृदौ–भरि आयौ[5] बचन न कह्यौ गयौ[6]।
'परमानंददास'[7] बूझे तैं ऊतरु कछु न दयौ[8]।।

६८८ (मलार)

या हरि कौ संदेस न आयौ।
बरष-मास-दिन बीतन लाग्यौ[9] बिनु-दरसन दुख पायौ।।
घन गरज्यौ पावस रितु प्रगटी चातक पीउ–पीउ सुनायौ।
मत्त मोर बन बोलन लागे बिरहिनि–बिरह जनायौ।।
राग मलार सह्यौ नहि जाई काहू पथिक हि गायौ।
'परमानंददास' कहा कीजै कान्ह मधुपुरी छायौ।।

६८९ (मलार)

ओसेरनि जियरा तपत है माई री ! माधौ के मिलन कौं।
मोहि चातुक की सी प्यास देखन नंद के ललन कौं।।
उद्यम बहुत किए अपने चित या मधुबन के गमन कौं।
कहा री ! करौं कैंसें करि राखौं बिरहानल तन जरन कौं।।
बदन बिलोकि दोष हम धरतीं इन्ह नयननि की पलन कौं।
'परमानंददास' बिनु–देखे बरष गयौ रिपु–दलन कौं।।

---

१. अलाप्यौ, २. पुहुमि (ग. घ. ङ छ),
३. इह पग लागि सिधारी (ङ. छ.) वह पग लागि (ग छ.), ४. यह (छ.)
५. आवै (छ.), ६. पर्‍यौ (ड.छ.), ७. बहुरि (ग. घ. ङ. छ.), ८. कर्‍यौ (ङ. छं) कह्यो (ग),
९. लागे (ग. घ. ङ. छ.), • पद सं० ४०१४ पर सूरसागर में भी पाठ–भेद के साथ

६६० (मलार)

• माई री ! माधौ–बिनु कैसें सहौं सावन घनघोर।
चहुँ[1] दिसि बृंदाबन बोलत[2] हैं मोर।।
एक जु और कठिन परी चातक करै[3] सोर।
पीउ–पीउ पुकारात रिपु अबधि बंधत[4] जोर।।
बिरह–बिथा अब जु सहत प्रान अति कठोर।
निकसि नहीं[5] तहाँ चलत जहाँ नंदकिसोर।।
अब तौ इहि[6] आनि बनी मरन होत मोर।
प्रीति हमारी गोबिन्द की पर न चाहत ओर।।
कहा करौं चोर्‍यौ मनु माखन के चोर।
'परमानँद' देखि गगन विहिनि सिर ढोर[7]।।

६६१ (धनाश्री)

सुरति आवै बदन की।
स्यामसुँदर कबहुँ[8] मिलिहैं मूरति कोटि मदन की।।
जब तैं हरि गमन कीन्हौं बिसरी सुधि सदन की।
कमल–नयन चारु–बयन माँखन दधि ओदन की।।
बिरह–बिथा कौं[9] मेटै कठिन काम–कदन की।
'परमानँद' हृदै बसौ केलि नंदनंदन की।।

६६२ (धनाश्री)

मन में रमि रही ओइ[10] बतियाँ।
जिहि गोपाल गोकुल बस कीन्हे सरद बिमल सुख–रतियाँ।।
ओई चंद्र–किरनि फुनि ओई अब लागति है ततियाँ।
सब विपरीत भए तिहि[11] औसर दाह दहन दुख छतियाँ।।
सीतलता लै गए नंद–सुत स्याम–सुभग तन भतियाँ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर ब्रज देखति इहिं गतियाँ।।

• *माधौ–बिनु कैसें० से भी प्रारंभ (क.)*
१. दहौं दिसि (ख.), २. बोलन लागे क. घ. ङ. छ) ३. करहि (क. ङ. छ.)
४. बधत (क), ५. नाहिंनें (क. ग. घ. ङ. छ)
६. जिय आइ (क.) ७. ठोर (क. ङ. छ)
८. कबहि, ९. कौन (ग. घ. ङ. छ.),
१०. वेइ (छ.), ११. इहि (ग.)

६६३ (धनाश्री)

गोपालहिं कैसैं कै लै आऊँ।
उन्ह तैं अधिक होंउ मैं नागरु तौ बातनि समुझाउँ।।
तुम्ह जानति हौ उह बातें हैं संग मिलें पुनि गाउँ।
'परमानँद' प्रभु मथुरा–राजा भाग होइ तो पाउँ।।

६६४ (सारंग)

री ! माधौ के पाइनि परिहौं।
अपनौ[1] सनेही जब देखोंगी[2] तन न्यौछावरि करिहौं।।
लोक–वेद की कानि ना करिहों ना काहू तें डरिहौं।
नँद–नंदन की निज चेरी है पिय कौ पान्यौ भरिहौं।।
कमल–नयन कों[3] जब देखोंगी सरबसु आगें धरिहौं।
'परमानँद' स्वामी सौं मिलिकैं अपने नेम तें नें टरिहौं।।

६६५ (सोरठ)

हरि ! तेरी लीला की सुधि आवति।
कमलनयन मोहन–मूरति कौ मन–मन चित्र बनावति।।
एक बार जाहि मिलत मया करि सो कैसें बिसरावति।
मृदु[4] मुसकानि बंक अबलोकनि चाल मनोहर भावति।।
कबहुँक निबिड तिमिर आलिंगति
कबहुँक पिक–स्वर गावति।
कबहुँक संभ्रम 'क्वासि–क्वासि' करि संग–हीन उठि धावत।।
कबहुँक नयन मूँदि अंतरगति बनमाला पहिरावति।
'परमानंद' प्रभु स्याम ध्यान करि ऐसें बिरहु गमावति[5]।।

६६६ (सारंग)

माई ! को मिलिबै नंदकिसोरै।
एक बार को[6] नैन दिखावै मेरे मन के चोरै।।
जागत गगन[7] गनत नहिं खूटत क्यों पाऊँगी भोरै।
सुनि री सखी ! तब[8] कैसें जीजै सुनि तमचुर खग–रोरै।।

---

१. स्याम (ग.), २. भेटोंगी (ग. ङ. छ. ज.)
३. नैननि निरखौं तब (ग.), ४. मुख (घ. ङ. छ.),
५. गँवावति, ६. मोहि नैन (ङ. छ.)
७. जाम (ग. घ.), ८. अब (ग. घ. ङ. छ.)

जो पें प्रीति होइ[1] अंतरगति जिनि[2] काहूऽब निहोरै।
'परमानंद' प्रभु आइ मिलहिंगे सखी ! सीस जिनि ढोरै

६६७ (सोरठ)

हरि–बिनु बैरिनि रैनि बढी।
हम अपराधिनि निठुर बिधाता काहे कौं सँवारि गढी।।
तन–मन जोबन वृथा जात है बिरहा–अनल डढी।
नंद–नँदन कौ रूपु बिचारत निसि–धोर[3] हर चढी।।
जिहि गोपाल मेरे बस होते सो विद्या न पढी।
'परमानँद' स्वामी न मिलें तौ घर तैं भली मढी।।•

६६८ (कान्हरौ)

ब्याकुल बार न बाँधति छूटे।
जब ते हरि मधुपुरी[4] कहँ सिधारे
उर के हार रहत सब टूटे।।
सदा अनमनी बिलख बदन अति
इहि ढँग रहति खिलवना[5] से फूटे।
बिरह–बिहाल सकल गोपी–जन
आभरन मनहु बटकुटनु लूटे।।
जल–प्रवाह लोचन तें बाढे
बचन–सनेह अभ्यंतर–छूटे।
'परमानंद' कहौं दुख का सौं
जैसै चित्र–लिखी मति टूटे।।

६६६ (कान्हरौ)

गोबिंद प्यारे बिनु कौन हरै नैननि की जरनि।
सरद–निसा अग्नि[6] भई चंद भयौ तरनि।।
मन–मन संतापु करति दुखित नंद–घरनि।
प्रेम–पुलकि बार–बार अँसुअनि की ढरनि।।

---

१. सत्य (ग. घ. ङ. छ.), २. मति काहू सौं (घ. ङ. छ.)
३. आनि (ग. घ. ङ. छ.), ४. धरोहर (क. घ. ङ. छ.)
• साधारण परिवर्तन से प० सं० ३८८७ पर सूरसागर में भी
५. कौं (क. ङ. छ.), मधुपुरी सिधारे (ग. घ.),
६. खिलौना (ग. घ. ङ. छ.), ७. अनल (घ. ङ. छ.)

गरग–बचन सुरति आवै पाउन्ह[1] की परनि।
'परमानंद' क्यौं बिसारी क्रीडा की करनि।।

१०००

(कान्हरौ)

हरि–बिनु हार करहु हो ! हाँतौ।
कलप–समान आजु कौ बासर नाँहिन बिहाँतौ।।
सुनि री सखी ! बिरह–दुख मो पै[2] सह्यौ नहिं जातौ।
'परमानंद' साँवरे सीतल नामहि कौ है नातौ।।

१००१

(कान्हरौ)

कौन रासिक है इनि बातनि कौ ?
नंदनंदन–बिनु का सौं कहिए
सुनि री सखी ! मेरे दुख या तन कौ।।
कहाँ वे जमुना–पुलिन मनोहर
कहाँ वे चंद सरद–रातनि कौ।
कहाँ वे सेज–पौढिबौ बन कौ
फूल–बिछौना मृदु पातनि कौ।।
कहाँ वे मंद–सुंगध–अनिल–रस
कहाँ वे षटपद जल–जातनि कौ।
कहाँ वे दरस परस 'परमानँद
कमल–नयन कोमल गातनि कौ।।

१००२

(केदारौ)

नींद तौ ताहि परै जाहि लाल[3] न भावै।
चारि जाम निसि बैठी जागौं कबहि[4] स्याम घन-आवै।।
जा की[5] छूटि जाइ चिंतामनि सो कौनें ढँग सोवै।
उपजी प्रीति पपीहा की सी सदा गगन–तन जोवै।।
जा कौ मन जा ही सौं बेध्यौ[6] सो ता हाथ बिकानौं।
'परमानंद' हिलग है ऐसी कहा राँक[8] कहा रानौं।।

---

१. *पाइन (पायन) (घ.)*
२. *नाहिने सह्यौ जातौ (ङ. छ.)*
३. *कान्ह (ग. छ.),* ४. *कबहुँ (ग. छ.),*
५. *जाकीऽब छूटि परै (क.),* ६. *बाँध्यौ (ग. छ.)*
७. *प्रीति (क. ग. घ. ङ.),* ८. *रंक (ग. घ.)*

१००३ (केदारौ)

माधौ–मिलन अजहूँ दूरि।
स्यामसुंदर ! सुमिरि तुब गुन नयन[1] आए पूरि।।
गयौ बसंत अनंत हरि–बिनु प्रकट पावस मास।
देखि जलधर–घटा उन्नत मुई चातक–त्रास[2]।।
'दास परमानंद' कौ प्रभु दीन–नाथ कहाइ।
कै तुम अपनौं बिरद छाँडहु कै तुम मिलहु आइ।।

१००४ (केदारौ)

पून्यौं–चंद्र देखि मृगनैनी माधौ कौ मुख–सुरति करै।
रास--बिलास सँभारत फुनि–फुनि सीस ढोरै अरु नयन भरै
कत ब्रजनाथ मधुपुरी जाते कत इहि पापी कंसु मरै।
जमुना–पुलिन[3] समीर सुसीतल उदित काम मनु तमिर हरै
ओइ[4] दिन बहुरि कबहुँ करिहै हरि[5]
रहसि कमल–कर बाँह धरै।
'परमानँद' स्वामी के बिछुरें मलिन बदन अरु हृदौ जरै।।

१००५ (मारू)

बोलि–बोलि रे ! बंस सुजाती[6]।
राम–कृष्ण[7] की बातें कहौ कछु तुम हौ बाल[8]–सँघाती।।
कर–पल्लव गहि अधर–बिंब धरैं मधुर नाद–सुर करती।
गिर तरवर पसु तापस पंछी सब हीं कौ मनु हरती।।
सरद–रयनि रस रास–रसिक कौं अधर–सुधा–रस पाए[9]।
सुंदर मुख तैं या छिद्रनि करि अमृत–समोह[10] बहाए।।
चित्र बिषान देखि गृह–भीतर नैन नीर भरि आए।
कमलनयन घनस्याम मनोहर समाचार कछु पाए।।
वे हम वे तुम वे बन वे गृह सो रस कहाँ दुराए।
जब तैं बिछुरे नंदनँदन मेरे स्रवन नैन न अघाए।।

---

१. *नैन रहे जल–पूरि (ङ. छ.)*
२. *प्यास, ३. तीर (घ.), ४. वे (छ.) वे ही (ग.), ५. सखि ! (ग. घ. ङ छ.)*
६. *सुजाती 'हो' (ग. में सर्वत्र), ७. कमल–नयन (क. ग. ङ छ.)*
८. *स्याम (घ. ङ. छ.), ९. प्याए (ग. घ. ङ. छ.)*
१०. *समूह (ग. ङ. छ.), ११. वेत्र (ग.)*

हम अबला मतिहीन दुखित[1] सब बिकल-वचन ब्रजनारी।।
'परमानंद' प्रभु चतुर–सिरोमनि कारन कौन बिसारी।।

१००६ (सोरठी)

गोपाल न आए मेरी माई !

जा–बिनु प्रान–ध्यान सचु नाहीं ता–बिनु कछु न सुहाई।।
मोहनलाल अवधि वह राखी पीउ पावस रितु आई।
कोइल[2] तरफि–तरफि मग जोवै तारे गनत बिहाई।।
'परमानंद' साँवन की समसरि मग जोवै चित[3] आसा।
हरि के[4] चरन चितवनी लागी लोचन मरत पियासा।।

१००७ (सारंग)

माई ! हौं लागी साँचे के पाछें।

नंद–कुँवार चतुर–चूडामनि गोप–भेष नट–काछें।।
जुवति–जाति मोहन कौ भाजन सदा काम–अभिलाखी।
तिन्ह करीर–फल क्यों भावत है जिनि चाख्यौ रस--दाखी।।
ओस प्यास जाय[5] कहौ कैसें जो न नदी–जल पीजै।
'परमानंददास' कौ ठाकुर प्रगट मिलै तौ जीजै।।

१००८ (सोरठी)

ए दिन ऐसे हीं गए री !

हरि मधुबन दुख का सौं कहिये कलप–समान भए री।।
अवधि गनत इकटक मगु चितवत सजनी ! नयन पिराने।
नागरि नारि मिलत रस बाढ्यौ प्रीतम भए बिराने।।
अब कौ का की चाह करत है राज–काज लपटाने।
'परमानँद' स्वामी कत आवैं मिले हैं सयान–सयाने।।

१००९ (सोरठी)

अब कत सुधि[6] आवै हमारी।

कमलनयन बहुतनि के बल्लभ आनँद–कंद मुरारी।।
उह अवसर तब हीं चलि बीत्यौ कान्ह कुँवर लरिकाई।
खेलत अंग–संग बन–भीतर कर गहि कंठ लगाई।।

---

१. देखिकें गोकुल की सब नारी (ग.), २. कोकिल (ग. घ. ङ. छ.)
३. चिंतासा (ख. छ.), ४. हरिचरन चित बनें (ख.)
५. जिय कहौ कैसें रहै (ख.), ६. सुरति (घ.)

राजकुँवार बड़े ब्रज–नाइकु नई प्रीति जिय भावै।
घूँघट में मुख–चंद्र बिलोकित मानवती जु मनावै।।
छाँडि राज–सुख रसिक साँवरौ अब कत गाँइ चरावै।
'परमानँद' प्रभु इहै भली जो कुसल सँदेसौ आवै।।

१०१० (विलावल)

अब कैसै पावत है आवनु।
सुंदरता सब गुन की परिमिति
ब्रज तजि चले मधुपुरी छावन।।
कमल–नयन मुख–इंदु मनोहर
नर–नारी–मन प्रीति बढावन।
नंदकिसोर बाल–लीला धरि
वेनु–नाद सीखे हैं गावन।।
कंस–तुषार–त्रास तन–दुर्बल
नलिन–देवकी–दुख–निवारन।
जदुकुल–कमल–दिवाकर प्रमुदित
तिमिर–हरन प्रभु त्रिभुवन–तारन।।
रे अक्रूर ! क्रूर सुफलक–सुत !
तोहि न बूझिये दूतहि आवन।
'परमानँद' स्वामी मिलिबे कौं
लागी हैं गोपी बिधिहिं मनावन।।

१०११

(बिलावल)

सरद–राति गोपाल–लीला रही है नैननि लागी।
अब हीं जो ब्रजनाथ मिलहिं हरहिं मनसिज–आगी।।
भोग–भवन भुजंग सीतल बाहु–दंड बिसाल।
हरषि तन–त्रय–ताप–मोचन कामिनी–प्रतिपाल।।
कर–कमल सीतल धरत उर परिहरत मन की पीर।
'दास परमाननंद' प्रभु हरि तरनि–तनया–तीर।।

१०१२ (धनाश्री)

क्यों न बनैं कुबिजा सौं आप अंग–त्रिभंगी।
सुभग सुजाति जानि कैं हरि कीनी है अरु नैन–कुरंगी।।

मोहन के मन अति मानी है कुटिल-कुटिल तैं तान तरंगी।।
'परमानंददास' के ठाकुर नृपति भएँ ऐसी अरधंगी।।

१०१३ (धनाश्री)

क्यों न बनैं कुबिजा सौ आप अंग–त्रिभंगी।
हम तन–मन सब सूधी ग्वालिन वे काम–कुटिल काजर–रंगी
कनक–कमल–रस–रूप जानिकै बिन बासनि भूल्यौ भ्रम–भ्रंगी
'परमानँद' भ्रमु रच्यौ जानि जल कृष्णसार तहाँ[2] हुती कुरंगी

१०१४ (गौरी)

कहाँ वे तब के दिननि कौ[1] चैन।
जब गोपाल गोकुल में रहते सुंदर अंबुज–नैन।।
यद्यपि राम ! गोप–गोपी–कुल नव गोधनु के ठाट।
ए ब्रज बेनु सकल संपति–सुख ए जमुना के घाट।।
एक कृष्ण–बिनु सब दीसत है चंद्र–हीन जैसी राति।
'परमानँद' स्वामी के बिछुरें गई देह मुख–काँति।।

१०१५ (कान्हरौ)

जा के भवन लच्छमी देवी।
इतनौ नैक ओसिलौ लागत कुबजहिं मिले जदुमनिन एबी
जद्यपि सब जानत जीवन–धन करत उग्रसेन की नेबी।
बड़े तैं बड़े सकल गुन–पूरन इन बातनि लागत है जेबी।।
मधुबन बसत स्यामघन–सुंदर बहु नृप–चरन–सरोरुह सेबी।
'परमानंददास' कौ ठाकुर जो देखिये सो सबै औरेबी।।

१०१६ (केदारा)

गोबिंद ! फेरि गोरस–माटु।
प्रगट होहु बिनोद–मूरति कहहु बानी चाटु।।
बहुरि काहे न फेरि कीजै पहिलें ही सौ ठाटु।
विस्वकर्मा नंदनंदन सुहथ पोहमी पाटु।।
हमहिं जो सुख दियौ चाहत मोह–रसना काटु।
'दास परमानंद' प्रभु हरि संग लियै स्वराटु।।

---

१. कौ (ग. घ. ङ. छ.)
२. जहाँ (क.)

१०१७ (सारंग)

भए हैं पहार से दिना।
निघटत नाहिन सुनि री सजनी ! मदनगोपाल बिना।।
स्याम–समीप कछुव नहिं जान्यौ जुग सम जात छिना।
'परमानंद' बिरहिनी हरि की तोरिऽब चली है तिना।।

१०१८ (सारंग)

बिरह–बिनु नहीं[1] प्रीति कौ खोज।
बिनु लागें कैसै आवत है इन नैननि कौं रोज।।
स्याम–मनोहर बिछुरे[2] सखी री ! बैरी भयो मनोज।
'परमानंद' निसूगें[3] जे नर ते हैं राजा भोज।।

१०१९ (कान्हरौ)

कुबिजा हरि–मानी तो सबहिनि जानी।
हरि के परसु भयौ तनु ऐसौ जैसौ सोनौं 'बारह बानी'।।
केतिक बात चोप चंदन की है जु कछू पहिली पहिचानी।
'परमानंददास' हू जानी अरु पुरान सुक–ब्यास बखानी।।

१०२० (धनाश्री)

काहे कों[4] दीनानाथ कहावत।
भए कठिन निरमोही माधौ ! तेरे ब्रजवासी दुख पावत।।
कपटी कुटिल लोक मधुबनियाँ बतियनि ही बहरावत।
जिन मधुकर[5] मकरंद–रस चाख्यौ
ताहि सीमल फल कैसै भावत।।
इहि ब्रज क्यों रहिबौ गुसाँई ! राम–रूप चितै गुन गावत।
'परमानँद' प्रभु बहुत कहा कहौ अपनौ बिरद लजावत।।

१०२१ (मलार)

पैयाँ तेरे लागौ पंथी ! मेरे बीर !
ग्वालिनी एक संदेसौ दीनौ ठाढी भई जमुना के तीर।।

---

१. *नाहिन (ग. ङ. छ.) नाहि (घ.),*
२. *बिछुरें (ग. ङ. छ.)*
३. *ज्ञान सूझे जे० (छ.),*
४. *कौं धौं (ग)*
५. *मकरंद–दरस–फल (ग. घ.) मकरंद–पान रस (क)*

जो तुम जात कंस के पाटन कहियो रे ! मेरे तन की पीर।
खेलत मिलै बसुदेव–भवन–महि[1]
इतनक ढोटा स्याम सरीर।।
बहुरि–बहुरि[2] बिनती करति हों
भरि–भरि लोचन डारति नीर।
'परमानंद' स्वामी सौं कहियो
चरन दिखावहु साहस धीर।।

१०२२ (सारंग)

तौ तोहि जानोंगी जान।
जो तू हमारी मानसी बिथा मेटिहै भगवान।।
बिरहानल–दुखित कीनी चातक पिक चंद।
चंदन जलजात सम संभव बिष–कंद।।
'परमानंद' स्वामी गोपाल कमलनयन चाहि।
प्रीति करि जो मिल्यौ चाहै छाँडौ मति ताहि।।

१०२३ (गौरी)

नैन भरि कबहुँ न देखनि पाए।
सकुचहिं सकुच रही घर–भीतर तब लगि भए पराए।।
प्रथम लरिकिनी गौनें आई रोकि–रोकि पिय राखी।
ससुर–सास की लज्जा मानी इहि मेरी सिखि साखी।।
हौं कहा जानौं मधुबन रहिहैं छाँडि नंद–गृह–बास।
'परमानंद' प्रभु–संग न खेल्यौ सरद–रयनि रस–रास।।

१०२४ (सारंग)

ब्रज की औरै रीति भई।
प्रात समै अब नाहिंन सुनियतु प्रति गृह चलत रई।।
ससि की किरनि तरनि-सम लागत जागत निसा गई।
उद्‌भट भूप मकर के तन की आज्ञा होत नई।।
बृंदावन की भूमि भाँवती ग्वालनु छाँडि दई।
'परमानंद' लाल[3] के बिछुरें बिधना और ठई।।

---

१. *में (ग. घ. ङ. छ.),*
२. *बिनती बहुत करति (ग)*
३. *स्वामी (घ.)*

१०२५ (बिहाग)

नींद तोहि बेचों सारी जो कोई गाहक होइ।
आए मेरे ललना फिरि गए अँगना
मैं या पै हि रहि सोइ।।
सीस धुनति कर सौं कर मींडति
तैं मेरौ सर्वसु डारौ री ! खोइ।
'परमानंद' प्रभु अब कै मिलैं तौ राखौं नैन समोइ।।

१०२६ (मलार)

बदरिया ! तू कत ब्रज पर घोरी।
असल न साल सु लावन लागी बिधना लिख्यो बिछोरी।।
रहो[1] जु रहो जाउ घर अपनैं दुख पावत है किसोरी।
'परमानंद' प्रभु सो क्यों जीवै जाकी बिछुरी जोरी।।

१०२७ (बिहागरौ)

माई री ! चंद लग्यौ दुख दैन।
कहाँ वे देस कहाँ वे मोहन कहाँ वे सुख की रैन।।
तारे गिनत गई री ! सब निसि नैंकु न लागे नैन।
'परमानंद' प्रभु पिय बिछुरे तैं पल न परत चित चैन।।

१०२८ (सारंग)

काहे तैं ब्रज कह्यौ रहन।
कमलनयन–बिना अब हीं लागी दुख सहन।।
मानौं रवि–कोटि–किरनि लग्यौ हृदौ दहन।
स्यामसुँदर–बिनु बिधु गोकुल गह्यौ मानौं गहन।।
बिरह–बिथा कौन मेटै मेरौ ई लहन।
'परमानँद' प्रभु बिना नैन लागे जल बहन।।

१०२९ (सारंग)

ऐसें दिन काहू जिनि बीतौ।
जैसें पिउ–बिनु मोहि जाति है जग लागतु सब रीतौ।।
भावी–बस निकसनि नहिं पावत प्रान हमारे रहै पी तौ।
'परमानंद' जीव जो जातौ होतौ नेह सही तौ।।

---

१. *रहे जु रहे जाहि गृह (ग.)*

१०३० (सारंग)

हरि मो सौ गमन[1] बात कही।
मन गहर उत तें नहिं आवत हौं सुनि सोच रही।।
आजु सखी सपनौं मैं देख्यौ विरह बेलि उलही।
जेइ–जेइ बचन कहे हरि मोसौं तेइ–तेइ भए सही।।
और सखी ! सपने में देख्यौ सागर–मैंड ढही।
'परमानंद' स्वामी के बिछुरें दुख मनु जात बही।। •

१०३१ (सारंग)

हरि कौ मिलनु भयो अब दूरि।
स्याम–मनोहर कहाँ पाइये सब आनँद की मूरि।
जब–जब सुरति संग की आवै नैन लिए जल पूरि।
वा मूरति[2] कौ दरसन नाहिन रही बिसूरि–बिसूरि।।
कछु हू सेवा भई न मो पै हौं चरननि की धूरि।
वह सनेह अब क्यौं बिसरतु है जब बाँधत लट–जूरि।।
तौ भेटिये नंद के नंदन भाग्य होंहि जो भूरि।
'परमानंद' बिरह भयौ बैरी तिहिं डारी कटि चूरि।।

१०३२ (सारंग)

सखी री ! कहि धौ गोपाल कब आवै।
बहुत दिवस के प्यासे लोचन अमृत प्याइ जिवावै।।
नटवर–भेष धरें या ब्रज में मुरली–सब्द सुनावै।
मोरमुकुट गुंजा–मनि[3]–माला रचि–रुचि[4] रास बनावै।।
कब गिरि चढि पीतांबर फेरै धौरी धेनु बुलावै।
'परमानंददास' कौ ठाकुर ब्रज–जुवती–मन भावै।।

१०३३ (सारंग)

वे देखियतु मधुबन[5] के रूख री !
तिनि[6] में स्याम हमारे प्रीतम
जिननि हरी मेरी नींद–भूख री।।

---

१. चलन (ग.)
• पद संख्या ३५८३ पर सूरसागर में भी पाठ परिवर्तन से
२. काम–रत (ङ. छ.), ३. बन (ङ.), ४. रचि (ङ),
५. हमारे मधुवन (ङ. छ.), ६. वा वन के स्वामी (ङ. छ. ग.)

कहा करों कछु कहत न आवै
दरसन–बिनु लागत अति दूख री।
'परमानंद' स्वामी के बिछुरें
बिरह कोल्हू भयौ तन मेरौ ऊख री।।

१०३४ (देवगंधार)

सखी री ! कित ही है वह गाउँ।
जहाँ बसत ब्रजराज–लाडिलौ मथुरा मोहन नाउँ।।
कालिंदी के कूल बसति है। परम मनोहर ठाऊँ।
मो तन पंख होहिं सुनि सजनी ! अब ही उठि उडि जाऊँ।।
होनौं होई सो होऊ किनि अब ही हौं इहाँ अन्न न खाऊँ।
'परमानंद' प्रभु कबहूँ न छाँड़ों अबक़ै पकरनि पाऊँ।।

१०३५ (मारू)

कहाँ री ! साँवरौ पाइये खेलिये मिलि साथ।
देखि सरद कौ चंद्रमा मींडति सब हाथ।।
हम अबला जोबन–भरी भईं कान्हहिं जोग।
हमें तजि हरि मथुरा गए कुबजा सौं भोग।।
जैसी रितु तैसी निसा कैसें बन चैन।
क़ैसें मुकुलित हैं द्रुम लता हुलसत मन मैन।।
बिरह बिकल ब्रज–भामिनी सोचति पछिताइ।
'परमानंद' प्रभु–मिलन कौं कछु करहु उपाइ।।

१०३६ (गौरी)

किये माई ! बारू के से घरुबा।
गए उदारि–पुदारि खेलि–मिलि मोहन नंद–दुलरुवा।।
ते दिन बिसरि गए मनमोहन जब डारे दधि–चरुवा।
'परमानंद' स्वामी के बिछुरें सूकनि लागे तरुवा।।

१०३७ (आसावरी)

हमारे अंतर की बिरह पीर कैसै हूँ न जाई।
गोविंद–गुन–स्रवन–कथन प्रान रहे माई !
भवन–काज कुटुँब–लाज जा पर बिसराए।
गोकुल–पति तजि गए सु अजहूँ न आए।।

तजों देइ इहि सनेह आगें सचु नाहीं।
बहुरि आस हरि–बिलास वृंदावन माहीं।।
'परमानंद' स्वामी गोपाल जन कौ दुख जानें।
पूरब–हेतु सखी ! चेति मिले ही रति मानें।।

१०३८ (आसावरी)

मेरौ मन गोविंद सौं मान्यौं ता तैं और न जिय भावै।
जागत सोवत इहै उतकंठा कोउ ब्रजनाथ मिलावै।।
बाढी प्रीति आनि उर–अंतर चरन–कमल चितु दीनौं।
कृष्ण–बिरह गोकुल की गोपी घर ही में बन कीनौं।।
छाँडे अहार–विहार देह–सुख और न चाली काऊ।
'परमानंद' बसत हैं घर में जैसें रहत बटाऊ।।

१०३९ (सारंग)

हमारें माई ! इहै बहुत जो बात चलावै।
राज–काज में स्याम–मनोहर कृपा करैं तो निकट बुलावैं।।
जादौपति वसुदेव कौ नंदन अब काहे कौं गोकुल आवै।
भए छत्रपति मधुवन–बासी अब काहे कौं गाँइ चरावै।।
चूक परी सेवन नहिं पाए मन समुझत विरह–दुख पावै।
'परमानंददास' कौ ठाकुर जा कौ जसु[1] ब्रह्मादिक गावै।।

१०४० (मलार)

नंद कौ लाडिलौ लला।
कब देखौं कब मिलौं अंक भरि कंदर्प–कोटि–कला।।
सावन–मास दहै वह चातक नान्हें बूँद–झला।
ता प्रीतम–बिनु गनत न खूटहिं वासर–बरष–पला।।
कहा करौं मनु रहै न राख्यौ विरहा दियौ जला।
'परमानंददास' इहि औसर हरि–बिनु कौन भला।।

१०४१ (सारंग)

कब लगि मन करौं हौं गाढौ।
स्याम–मनोहर दिन–प्रति देखौं अपने आँगन ठाढौ।।
सपने माँझ दिखाई दीनौ दोऊ हाथ पसास्यौ।
जागी रैनि बहुत दुख उपज्यौ सिर धरनी गहि मास्यौ।।

---

१. सब (ग.)

सोइ जु घरी भली प्रीतम सौं इतनौ सुख बहुतेरौ।
'परमानंद' स्वामी कबहिं मिलेंगे प्रान–जीवन–धन मेरौ।।

१०४२ (गौरी)

लरिकाई लौं रोई देत हैं जैसे इहाँ देते।
पाछे तैं मेरे माट कौ गो–रस हरि लेते।।
दुरि–दुरा कौ खेलिबौ बन–महियाँ।
बाल–दसा लपटाइ कैं गहते[1] मेरी बहियाँ।।
वे बातें जब सुरति करी लोचन भरि आए।
'परमानंद' प्रभु प्रीति कै हरि भए पराए।।

१०४३ (गौरी)

मदनगोपाल हमारे उनकें किहि लखे में पारे।।
तब वह प्रीति-मिलनि बन मँह की प्राननि किए न न्यारे।
स्याम–मनोहर आय बैठते रुचिर तलप पर पारे।।
बछ उबेरि खेलिबे के मिसि चलत सवार–सवारे।
तब ऐसी करि हमारे हित कौं संखचूड से मारे।।
तुम ठाकुर बनिता तहाँ केती हम गुन–ग्राम बिचारे।
'परमानंद' प्रभु तिनि की कहावति जनम नाथ-हित हारे।।

१०४४ (सारंग)

कहाँ तैं आए हौ द्विज–राज !
साँचु कहौ तुम कहाँ जाहुगे कहाँ बसौगे आज।।
हम तौ थकित अस्त–उदयाकर रहे तलप इहाँ साज।
इहि बट बसत जु कारौ भोगी कहत तिहारे काज।।
गोकुल जाउ सँकेत सबनि सौं जाइ कहौ हरि ! लाज।
'परमानंद' बछ डरत हमारे तुष्णि विप्र ! लेहु नाज।।

24. भ्रमर–गीत

१०४५ (सारंग)

आजु कछु नीकी बात सुनावै।
भुज फरकत कंचुकी–बँद तरकत नंदनँदन घर आवै।।

---

१. गहत (ग. छ.)